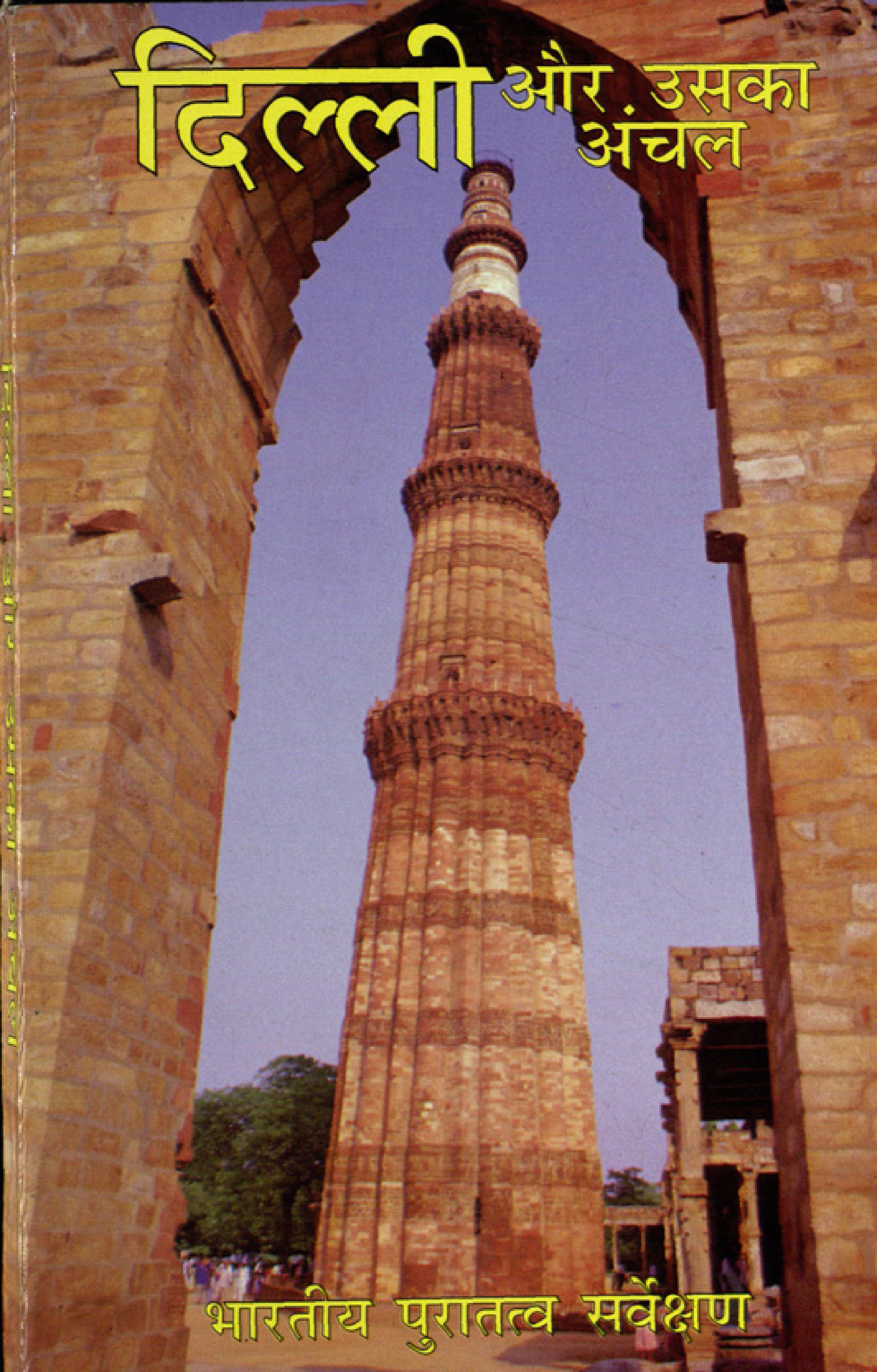
दिल्ली और उसका अंचल



भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण

दिल्ली और उसका अंचल

द्वारा

वाई. डी. शर्मा

एम.ए., डी. फिल (ऑक्सोन)

महानिदेशक, भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण,

जनपथ, नई दिल्ली

2002

प्रथम संस्करण, 1991
द्वितीय संस्करण, 2002

प्रकाशन वर्ष 2002
भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण

मूल्य : पचास रुपये

मुद्रक : बंगाल ऑफसेट वर्क्स, 335 खजूर रोड, करौल बाग, दिल्ली

विषय-सूची

पृष्ठ

पृष्ठ

पृष्ठ

प्रस्तावना

इस पुस्तक के प्रथम संस्करण के (सन् 1964 में) प्रकाशन के पश्चात् दिल्ली में कुछ नई खोजें हुई हैं, इनमें से सबसे चमत्कारी खोज अशोक की शिला-अंकित राजाज्ञा का मिलना था। पुराने किले की खुदाई के परिणाम संवेदनशील ही नहीं बल्कि दिल्ली के अतीत पर काफी हद तक प्रकाश डालते हैं। वर्तमान संस्करण को संशोधित करके इन सभी खोजों को इसमें शामिल किया गया है। इस संस्करण में कुछ नए चित्रों को भी जोड़ा गया है। आशा की जाती है कि संस्मारिका के साथ जोड़ी गई सूची से इसकी उपयोगिता बढ़ जाएगी।

मैं अपने सहयोगियों डा० जेड० ए० देसाई, श्री एम० सी० जोशी तथा श्री डब्ल्यू० एच० सिद्दीकी के प्रति उनके द्वारा दिए गए सुझावों के लिए आभारी हूं जिनका इस संस्करण में समावेश किया गया है। मैं अन्य साथियों द्वारा दी गई सहायता के लिए भी आभारी हूं :

नई दिल्ली
7 जनवरी, 1974

वाई० डी० शर्मा

दिल्ली और उसका अंचल

1. परिचय

भारत में बहुत कम नगर ऐसे हैं जो दिल्ली की तरह अपने दीर्घकालीन अविच्छिन्न अस्तित्व एवं प्रतिष्ठा को बनाये रखने का दावा कर सकें। अतीत के धुंधले पूर्व-ऐतिहासिक काल में सोलहवीं शताब्दी में बने पुराने किले के स्थल पर सम्भवतः इन्द्रप्रस्थ बसा हुआ था, जो महाभारत महाकाव्य के योद्धाओं की राजधानी था। इस बस्ती की भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण ने हाल ही में बड़े पैमाने पर खुदाई की है। यह विभिन्न कालों में विभिन्न नामों से विख्यात रही। इस खुदाई से इसके मौर्य काल से लेकर प्रारंभिक-मुगल ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी ईसवी तक के निरंतर बसे रहने का पता चलता है। जैसा कि कुछ विद्वानों का विश्वास है कि महाभारत काल के प्राचीन अवशेष, यदि वे भूरे रंग से चित्रित मिट्टी के विशिष्ट बर्तनों से सम्बन्धित हैं तो वे बाद के कालों से संबंधित कूड़ा-करकट एवं मलबे के ढ़ेर से उभर कर आए हैं और इस प्रकार वे पुरातत्ववेत्ताओं के पूर्वानुमानित अनुभवों या ज्ञान की सीमा की पकड़ में नहीं आ पाए हैं। फिर भी इन अवशेषों ने उन्हें इस बात के लिए प्रोत्साहित किया है कि वे दिल्ली में भूरे रंग से चित्रित मिट्टी के बर्तनों का इस्तेमाल करने वाले लोगों की एक भिन्न बस्ती की खोज के कार्य का परित्याग न करें।

मौर्य सम्राट् अशोक (273-236 ईसा पूर्व) के एक शिलालेख की 1966 में हुई हाल ही की एक खोज से दिल्ली के इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ गया है। यह शिलालेख कालकाजी मंदिर के पश्चिम में श्रीनिवासपुरी के समीप अरावली पर्वत माला के एक छोर पर एक खुरदुरी चट्टान पर खुदा हुआ है (पृष्ठ 10, 104)।

आठवीं शताब्दी में या इससे कुछ समय पूर्व, कुतुबमीनार से 8 किलोमीटर पश्चिम में सुल्तान ग़ारी के मकबरे के स्थल पर एक बड़ा मन्दिर मौजूद था। बहुत संभव है कि इस मंदिर को प्रतीहारों के किसी सामन्त ने बनवाया हो। फिर भी तोमर राजपूतों ने नवीं या दसवीं शताब्दी में दिल्ली के दक्षिण में स्थित पहाड़ियों पर अपने आपको सुव्यवस्थित कर लिया था। बाद में बारहवीं शताब्दी में चौहान (चाहमान) राजपूतों ने उन्हें उखाड़ फेंका और उनका स्थान ले लिया। राजपूत शासन के दौरान अनेक हिन्दू (ब्राह्मण धर्म के) और जैन-मंदिरों का निर्माण किया गया। बारहवीं शताब्दी के अन्त में मुसलमानों ने चौहान शासक पृथ्वीराज को हराया और इस प्रकार प्रारंभ में दिल्ली पठान-सुल्तानों तथा बाद में मुगलों की राजधानी बनी। अंग्रेजों के काल में जब देश एकीकृत नियंत्रण में आया तो प्रारम्भ में राजधानी कलकत्ता में रही, परन्तु उसे वहां से हटाकर 1911 में दिल्ली लाया गया। 1947 में देश के स्वतन्त्र होने पर इस स्थिति को नहीं बदला गया।

ऐसे बहुमुखी इतिहास सहित, यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है कि दिल्ली में अपने उतार-चढ़ाव वाले अतीत के साथ स्मृतिचिह्नों और अवशेषों की भरमार रही है। उसके पूर्व-ऐतिहासिक और ऐतिहासिक कालों के अवशेष बाद की इमारतों के नीचे दबे पड़े हैं। इन कालों के जीवन का कुछ पता पुराना किला (पृष्ठ 121) में उत्खनन के बाद निकले पुरावशेषों और इमारती ढांचों के अवशेषों से चलता है। राजपूत कला और वास्तुकला की एक झलक सूरजकुंड के जलाशय, प्राचीरों एवं सुल्तान ग़ारी के मकबरे तथा कुव्वतुल इस्लाम मस्जिद में प्रारंभ के मुसलमानों द्वारा पुनः इस्तेमाल किये गए मंदिरों के नक्काशीदार कटे-फटे स्तंभों तथा छतों की पट्टियों से मिलती है। परन्तु पठानों और मुगलों के द्वारा बनाई गई मस्जिदें, मकबरे और किले तो दिल्ली के सर्वाधिक उपलब्ध संस्मारक अवशेष हैं। इनके बारे में अक्सर कहा जाता है कि ये ही सात नगरों की संस्थापना का ज्ञान कराते

है।

तेरह सौ से अधिक सूचीबद्ध दिल्ली के स्मारकों में से इस संक्षिप्त मार्गदर्शिका में लगभग एक सौ चालीस स्मारकों का संक्षेप में वर्णन किया गया है। दर्शक को अपनी अभिरुचि और अपने समय को ध्यान में रखकर उसके अनुसार संस्मारकों का देखने के लिए चयन करना चाहिए। एक संक्षिप्त भ्रमण सूची में सूरजकुंड, तुगलकाबाद, कुतुबमीनार, हौजखास, हुमायूं का मकबरा, पुराना किला, सफदरजंग का मकबरा, कोटला फिरोजशाह और लाल किला तो संभवतः होना ही चाहिए परन्तु यदि इसे और कम करना चाहें तो कम से कम सूरजकुंड, कुतबमीनार और लाल किला तो अवश्य ही देखना चाहिए।

अधिकांश स्मारक, जिनका यहां जिक्र किया गया है, सड़क के रास्ते पर हैं (फलक 27) और इन बस्तियों तक बस अथवा किराये की सवारी लेकर पहुंचा जा सकता है। दिल्ली परिवहन निगम सर्दी के मौसम में प्रतिदिन दो विशेष बस सेवाएं चलाता है जो कनॉट सर्कस स्थित सिन्धिया हाऊस से रवाना होती हैं। इनमें से एक सुबह नौ बजे और दूसरी दोपहर 2.15 बजे चलती है। ये बसें प्रत्येक अपने-अपने फेरे में अलग-अलग स्मारकों और अन्य महत्वपूर्ण स्थलों को दिखलाती हैं। गर्मी के महीनों में केवल एक लम्बा फेरा ही लगता है । बस सवेरे 7.30 बजे चलती है । अतिरिक्त जानकारी के लिए दर्शक को सलाह दी जाती है कि वह या तो दिल्ली परिवहन निगम के सूचना अधिकारी से संपर्क करे या 88 जनपथ पर पर्यटन कार्यालय से संपर्क करे।

इस आकार की पुस्तिका में यह आवश्यक है कि वर्णन संक्षेप में ही हो। उन लोगों के लिए, जो स्मारकों का कुछ अधिक विस्तार से अध्ययन करना चाहते हों, इस पुस्तक के अन्त में एक विशिष्ट ग्रंथ सूची दी गई है। लेखक ने 'आर्कियोलॉजिकल रिमेन्स, मॉनूमेन्ट्स एण्ड म्यूजियम्स' (नई दिल्ली, 1964) में प्रकाशित इस्लामी स्मारकों पर उसके द्वारा लिखे गए अध्याय से कुछ सामग्री लिया अथवा उद्धृत किया है ।

2. भारतीय-इस्लामी वास्तुकला की मुख्य विशेषताएं

मुसलमानों की भारत पर विजय ने जीवन और संस्कृति के स्वदेशी स्वरूप पर एक कारगर और निश्चित प्रभाव छोड़ा जिसने कला की अन्य अभिव्यक्तियों के बीच वास्तुकला की एक नई शैली को भी जन्म दिया। इस शैली ने निर्माण में न केवल कुछ नये तौर-तरीकों और सिद्धांतों को अपनाया बल्कि इस्लाम के मानने वालों की धार्मिक और सामाजिक आवश्यकताओं को भी प्रकाशित किया ।

हिन्दू, बौद्ध या जैन निर्माण कार्यों में रिक्त स्थानों को भरने के लिए या तो शहतीर डाले जाते थे या ईंटों या पत्थरों के रद्‌दे एक के ऊपर दूसरा तथा ऊपर वाला थोड़ा आगे बढ़ा हुआ, इस रुप में बिछाये जाते थे ताकि खुले फैलाव को शनैः-शनैः कम करके इतने आकार में ले आया जाए कि उसे एक पत्थर से ढका जा सके। यद्यपि इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि पहले भारतवासियों को वास्तविक मेहराब (ट्रू आर्च) की जानकारी थी परन्तु इस बात पर अधिक विश्वास किया जाता है कि मुसलमान अपने साथ वास्तविक मेहराब के निर्माण का सिद्धांत लेकर आए ताकि ईंटों या पत्थरों को डाट-पत्थर के रूप में बिछाकर एक गोलाई बनाई जा सके और इस प्रकार की दीवारों या स्तम्भों के बीच के स्थान पर मेहराब डाली जा सके। हर हालत में यदि वास्तविक मेहराब के बारे में प्राचीन काल के स्वदेशी वास्तुकारों को जानकारी रही भी हो तो मुसलमानों ने इसका परिचय करवाया और इस देश में इसका दृढ़ता के साथ प्रचलन-आरोपण किया गया। परिणाम यह हुआ कि समतल सरदलों या टोड़ेदार छतों का स्थान मेहराबों या मेहराबी छतों तथा पीढ़ा छतों या शिखरों का स्थान गुंबद ने ले लिया। चौरस निर्माण के ऊपर एक गोल गुम्बद खड़ा करने की आवश्यकता ने बगली डाटों की व्यवस्था करके बहुविध भुजाओं और कोणों की शुरुआत

की ताकि गुम्बद के लिए गोलाकार ड्रम निर्माण करने के लिए एक आधार, जिसकी कई भुजाएं हों, सामान्य तौर पर सोलह भुजाएं हों, प्राप्त किया जा सके।

दीवारों की ओर से बहिर्वेशन करते हुए तथा बाहुधरन ब्रैकेटों को दीवार में लगाकर एक छायादार स्थान या छज्जा तैयार किया गया जिससे छज्जे (दाबे या छायादार स्थान) के निर्माण का प्रारम्भ हुआ। शानदार नक्काशी युक्त लटकनोंवाले ब्रैकेट जिन्हे आरोही निक्षेप लटकन कहा गया है और जब उनसे छज्जों का एक आधार बना तो इसने इनकी सजावट को मनमोहक बना दिया। छतरियां, ऊंची मीनारें और अर्ध- गुंबदीय दो प्रवेश द्वारों का होना यह भारतीय-इस्लामी वस्तुकला के अन्य कुछ विशिष्ट लक्षण है।

हिन्दू और मुसलमानों की पूजा और अर्चना के प्रकारों में भिन्नता के कारण मंदिर और मस्जिद के भूतल संयोजन में अन्तर है । एक सामान्य हिन्दू मन्दिर के लिए देवी-देवताओं की मूर्ति को रखने के लिए एक गर्भगृह और पूजा करने वालों के लिए उसके सामने प्रायः एक छोटे मंडप (सभा भवन) का होना पर्याप्त समझा जाता था परन्तु इस्लामी इबादत के तौर तरीके में सामूहिक इबादत पर जोर दिया जाता है, उसके लिए एक विशाल सहन की आवश्कता होती है जिसके पश्चिमी छोर पर एक बड़ा इबादत का हाल (लीवान) होता है इस इबादतगाह (प्रार्थना के बड़े कमरे) की पिछली दीवार के बीच में एक ताक या आला होता है जिसे मिहराब कहते हैं और यह प्रार्थना की दिशा (किबला) का संकेत करता है। उसकी दाईं ओर एक प्रवचन मंच (मिम्बर) होता है। यह उस इमाम के लिए होता है जो इबादत का नेतृत्व करता है। एक बुर्ज या मीनार, जो प्रारंम्भ में मुअज्जिन के लिए प्रार्थना (माज़ना) में विश्वास रखने वालों को बुलाने के लिए होती थी, वह बाद में वास्तु विशेष का एक अंग बन गई। एक गलियारा या उपखंड प्रार्थना के बड़े कमरे या किसी अन्य भाग मे उन महिलाओं को स्थान देने के लिए

होता था, जो पर्दा करती थीं। मस्जिद का मुख्य द्वार पूर्व की ओर होता है और उसके किनारे गलियारों युक्त होते थे। मस्जिद के सहन में सामान्यतः एक तालाब (हौज) की व्यवस्था हाथ-पैर धोने के लिए की जाती है।

हिन्दुओं द्वारा अपनाई जाने वाली दाहसंस्कार की प्रथा से अलग मृतकों को गाड़ने की प्रथा के कारण मकबरे का प्रचलन हुआ। मकबरे के आवश्यक तत्वों में है एक गुम्बदनुमा कक्ष (हुजरा) जिसके बीच में एक स्मारक (जरीह), पश्चिमी दीवार में मिहराब और वास्तविक कब्र का एक भूमिगत कक्ष (मकबरा)। बड़े और अधिक जटिल मकबरों में अलग से एक मस्जिद होती है तथा बाद के मकबरों में एक सुनियोजित बाग भी होता है। शवगृह के कक्ष का प्रवेश द्वार सामान्यतः दक्षिण में होता है।

इस्लामी भवनों में प्रयुक्त सजावट की पद्धति, विषय-वस्तु या मूलभाव भी पूर्व हिन्दू प्रचलनों से भिन्न थे। स्वदेशी सजावट काफी हद तक प्राकृतिक थी जिसमें उष्णकटिबंधीय देश के मानवीय और पाशविक रुपों को स्पष्टता के साथ तथा वनस्पति जीवन की विशेषताओं को प्रचुरता के साथ चित्रित किया गया है। मुसलमानों में प्राणी-जीवन के प्रदर्शन की, धर्मग्रंथ संबंधी आदेशों द्वारा निषेधाज्ञा है और इसलिए उन्होंने ज्यामितिक और अरबस्क नमूनों, आलंकारिक लिखावट तथा पेड़-पौधों तथा फूलों के औपचारिक प्रदर्शन का रास्ता अपनाया जिसमें उस देश की प्रकृति की अपनी अपर्याप्तता को, जहां इस्लाम का जन्म हुआ, प्रतिबम्बित किया गया है।

अभिव्यक्ति की बोधगम्यता और सरलता, सामग्री का किफायती रूप से इस्तेमाल तथा उनकी क्रमबद्ध व्यवस्था इस्लामी कला की अपनी विशेषता है जो हिन्दू कला के उल्लास, प्रचुरता और अतिशयोक्ति से अलग है। इस्लामी इमारतों में पत्थर पर आलंकारिक डिजाइनों की नक्काशी कम गहराई में की गई है, पलस्तर पर कटाव किया गया है, चित्रकारी की गई है या जड़ाव किया गया है। पत्थर या अन्य सतह पर भी मुसलमानी अलंकरण वास्तव में सामान्यतः कशीदाकारी से मिलता जुलता है। टाइलों पर दग्ध

मीनाकारी करके भी आश्चर्यजनक रंग का प्रभाव डाला गया है।

भारत में चूने की जानकारी पहले से थी परन्तु इसका इस्तेमाल बहुत सीमित था, ईंट के काम के लिए मिट्टी का इस्तेमाल होता था जबकि पत्थरों के बड़े खंडों को आमतौर पर बिना मसाले के लगाया जाता था और एक दूसरे के साथ लोहे के शिकंजों के साथ कसकर बांधा जाता था। दूसरी ओर मुसलमान चूने का व्यापक रूप से प्रयोग करने लगे जो न केवल एक मसाले की चिनाई के काम आता था बल्कि पलस्तर और एक उत्कीर्ण अलंकरण और दग्ध मीनाकारी के काम के लिए आधार तैयार करता था।

प्राचीन हिन्दू भवनों के अपवित्रीकरण, विनाश तथा लूटखसोट में अभिव्यक्त प्रारंभिक प्रतिक्रिया के बाद की मुसलमानों की सृजनात्मक भवन-निर्माण संबंधी गतिविधि को दो चरणों में बांटा गया है। प्रथम चरण में प्राचीन हिन्दू मन्दिरों या अन्य भवनों को जानबूझकर नष्ट कर दिया गया और उनकी सामग्री को नए काम-चलाऊ भवनों के लिए इस्तेमाल किया गया। बाद के चरण में मस्जिदों, मकबरों और अन्य भवनों के लिए पूरी-पूरी योजनाएं बनाई गयीं और उन्हें उपयुक्त सामग्री के साथ बनाया गया, जिसे प्रारंभ में जहां कहीं आवश्यक हुआ, खान से खोदकर निकाला गया, तैयार किया गया और अलंकृत किया गया। इस चरण में बनाए गए मुस्लिम भवन सर्वोत्तम हैं।

भारतीय-इस्लामी वस्तुकला मोटे तौर पर तीन वर्गों के अन्तर्गत आती है। सुल्तानों द्वारा निर्मित या उनके संरक्षण में निर्मित स्मारक पहले वर्ग में आते हैं। आंशिक रूप से उसी समय कुछ स्मारक ऐसे विभिन्न प्रांतों में बनाए गए जो सुल्तान द्वारा नियुक्त सूबेदारों द्वारा शासित थे परन्तु जिन्होंने शीघ्र ही अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया। ये एक विविध परंतु अलग वर्ग को दशति हैं। तीसरे वर्ग में आते हैं मुगल काल के निर्माण जिन्होंने भारत को लगभग एक एकीकृत अधिराज्य के अधीन ला खड़ा किया था।

दिल्ली के स्मारक पहले और तीसरे वर्ग के हैं। प्रथम वर्ग के महत्वपूर्ण स्मारकों में दिल्ली के बाहर केवल दो संस्मारक ही हैं- अजमेर में अढ़ाई

दिन का झोंपड़ा तथा जिला नागौर में बड़ी खादू स्थित जामे-मस्जिद । दिल्ली और आगरा के हिस्से में सबसे अधिक स्मारक आते हैं जिनका निर्माण स्वयं मुगल शासकों ने किया या मुगल शासकों से जुड़े हुए अधिकारियों ने किया था।

3. इतिहास और वास्तुकला

(क) प्रति-ऐतिहासिक काल

दिल्ली के तथाकथित सात नगर, जिनमें से सबसे प्राचीनतम दसवीं शताब्दी के अन्तिम समय का हो सकता है, वह ही सब कुछ दिल्ली के अपने अतीत का प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए काफी नहीं है और न ही इनमें नगरों के दीर्घकालीन और महत्वपूर्ण जीवन का सम्पूर्णकाल ही प्रतिनिधित्व पाता है। ऐसा लगता है कि दिल्ली के आसपास बस्ती लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व बसी होगी। सोलहवीं शताब्दी में बने पुराने किले के नीचे परीक्षण के तौर पर 1955 में खोदी हुई खाई से बढ़िया भूरे रंग के चित्रित मिट्टी के बर्तनों के होने का पता चला है जिन पर सामान्यतः काले रंग में साधारण चित्रण किए गए हैं। ये बर्तन, जो पुरातत्व-वेत्ताओं के बीच भूरे रंग के चित्रित बर्तनों के नाम से विख्यात हैं, प्रायः ईसा से 1000 वर्ष पूर्व के हैं। इस स्थल की 1969-73 के दौरान व्यवस्थित रुप से खुदाई की गई परन्तु एक सुव्यवस्थित भूरे रंग से चित्रित बर्तनों के स्तरों का पता नहीं लग पाया, यद्यपि बाद के युग के संचयनों में ऐसे बर्तनों के ठीकरे मिले हैं, अन्य समकालीन स्थलों जिनकी खुदाई बड़े पैमाने पर की गई, उनसे उपलब्ध प्रमाण को एक व्यापक स्वरूप के रूप में एक साथ रखते हुए समझा जा सकता है।

यह महत्वपूर्ण है कि भूरे रंग से चित्रित बर्तन अनेक ऐसे स्थानों पर पाये जाते हैं जिनका संबंध महाभारत के महाकाव्य की कहानी से है और इनमें से एक पांडवों की राजधानी इन्द्रप्रस्थ की पहचान परम्परागत दिल्ली से की

गई है। यह तथ्य है कि इन्दरपत के नाम से जाना जाने वाला एक ग्राम, जो स्पष्ट है कि इन्द्रप्रस्थ का अपभ्रंश है, वर्तमान शताब्दी के प्रारंभ तक पुराना किला में स्थित था जबकि उसको अन्य गांवों के साथ राजधानी नई दिल्ली का निर्माण करने के लिए हटाया गया। दिल्ली में स्थित (आधुनिक - सरबन) सारवल गांव है जिससे 1328 ईसवी का संस्कृत का एक अभिलेख प्राप्त किया गया है और जो इस समय लाल किले के संग्रहालय में मौजूद है (पृष्ठ 15)। इस अभिलेख में स्वयं इस गांव का इन्द्रप्रस्थ[1] के जिले (प्रतिगण) में स्थित होने का उल्लेख है।

महाभारत के अनुसार कुरु देश की राजधानी गंगा के किनारे हस्तिनापुर में स्थित थी तथा जब पांडवों और उनके चचेरे भाई कौरवों के बीच संबंध बिगड़ गए तो कौरवों के पिता धृतराष्ट्र ने पांडवों को यमुना के किनारे स्थित खांडवप्रस्थ का क्षेत्र दे दिया। वहां उन्होंने समुद्र जैसे गड्ढों द्वारा घिरे हुए एक नगर को बनाया और उसकी ऊंची रक्षात्मक प्राचीरें बनायीं। स्पष्ट है कि यह इन्द्रप्रस्थ नगर का नाम था और जिस क्षेत्र में यह स्थित था वह खांडवप्रस्थ के नाम से विख्यात था। कहा जाता है कि कौरवों पर अपनी विजय के बाद पांडव हस्तिनापुर लौट आए और अन्ततः उन्होंने इन्द्रप्रस्थ यादव वंश के एक वंशज को सौंप दिया जिससे कृष्ण संबंधित थे और जो स्वयं इन्द्रप्रस्थ में पांडवों के पास गए थे।

एक परम्परा मौजूद है जिसके अनुसार पांडवों ने कौरवों से पांच गांव मांगे थे, जिनके नामों के अन्त में पत आता है जो संस्कृत के प्रस्थ का हिन्दी साम्य है। ये इन्दरपत, बागपत, तिलपत, सोनीपत और पानीपत कहलाते हैं। यह परम्परा निश्चय ही महाभारत पर आधारित है परन्तु उसमें जिन चार गांवों का उल्लेख है वे अलग हैं और पांचवें का नाम नहीं दिया गया है। फिर भी ऊपर जिन स्थानों के नाम दिए गए है जिनमें ओखला नहर के पूर्वी-किनारे पर दिल्ली के दक्षिण में लगभग 22 किलोमीटर दूर स्थित तिलपत भी सम्मलित है - उन सब से भूरे रंग के चित्रित बर्तन मिले हैं।

---

1 एपिग्राफिया इण्डिका, I (1892) पृष्ठ 93-95.

उन बस्तियों में जहां भूरे रंग के चित्रित बर्तन प्राप्त होते हैं इन बर्तनों के साथ-साथ लोहा और तांबा भी प्रयुक्त होता था। अन्य औजार हड्डियों से बनाए जाते थे। जबकि मिट्टी, हड्डी या कांच का प्रयोग मनकों और चूड़ियों जैसे आभूषणों के बनाने के लिए होता था। इनके निवासी मुख्य रुप से पशु चराते थे और खेती करते थे। इनके घर मिट्टी या टट्टर के और लिपाई करके बनाए जाते रहे होंगे ।

(ख) प्रारंभिक ऐतिहासिक काल से लेकर मध्यकाल तक

पुराने किले की खुदाई से मुख्यत: प्रारंभिक-ऐतिहासिक काल से लेकर मध्य काल तक दिल्ली के आसपास आवास होने के प्रमाण मिलते हैं। यहां सल्तनत, राजपूत, उत्तर-गुप्तकाल, शक, कुषाण तथा शुंग काल से लेकर नीचे मौर्य काल तक के घरों, सोख-कुओं और गलियों के प्रमाण मिले हैं। मौर्य काल (300 ई0 पू0) का प्रमाण उत्तरी काले पालिशदार बर्तन जो बढ़िया किस्म के मिट्टी के बर्तन हैं जिनकी सतह चिकनी है तथा आहत मुद्राओं से होती है। सिक्के, विशिष्ट किस्म के मिट्टी के बर्तन तथा पकी मिट्टी की मुहरें और लघु-मूर्तियां ऊपर उल्लिखित अन्य कालों की साक्षी है।

मौर्य वंश के सम्राट अशोक (273-36 ईसा पूर्व) के दिल्ली के साथ संबंध होने का पता हाल ही में प्रकाश में आए एक लघु शिलालेख के संक्षिप्त रुप से चला है जिसे श्रीनिवासपुरी[1] के समीप चट्टान पर उत्कीर्ण किया गया था। इस खोज से यह भी पता लगता है कि दिल्ली मुख्य मार्ग पर थी जो प्राचीन भारत के मुख्य नगरों को जोड़ता था (पृष्ठ 104)।

1 एम0 सी0 जोशी और बी0 एम0 पांडे, 'ए न्यूली डिस्कवर्ड इन्स्कृप्शन ऑव अशोक ऐट बाहापुर, डेल्ही', जरनल ऑव दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑव ग्रेट ब्रिटेन ऐंड आयरलैंड, 1967 पार्ट्स 3-4, पृष्ठ 96-98।

दिल्ली में ऐतिहासिक काल के कुछ अन्य अवशेष भी हैं परन्तु वे अपने स्थल पर विद्यमान नहीं हैं और इन्हें काफी समय बाद बाहर से लाया गया है। इनमें से दो पालिशदार बलुआ पत्थरों के स्तम्भ हैं जिनपर अशोक की राजाज्ञाएं अंकित हैं (पृष्ठ 26, 128, 134) जो यहां फिरोजशाह तुगलक (1351-88) द्वारा लाए गए थे और तीसरा कुतुब क्षेत्र में लोहे का बहुचर्चित स्तम्भ है जिसका निर्माण गुप्तकाल में किया गया था परन्तु इसे दिल्ली में शायद दसवीं शताब्दी में आरोपित किया गया था (पृष्ठ 13, 55)

(ग) राजपूत

राजपूत काल से हमारा ध्यान भूमि पर खड़े संस्मारकों की ओर जाता है, यद्यपि उस काल के घर, जो जमीन के नीचे दबे हुए थे, उन्हें भी पुराने किले के उत्खनन में खोज निकाला गया है। कुछ वर्ष पूर्व कुछ सुन्दर ढंग से गढ़े हुए बलुआ पत्थर के सरदल (फलक 5क) और सूचियों की चूलों सहित एक वेदिका स्तम्भ मिला है जोकि सुल्तान ग़ारी के मकबरे की कंकरीट की छत में जड़े हुए थे जो सल्तनत के काल के सबसे प्राचीन मुस्लिम कब्रों का संस्मारक है, जिसका निर्माण तेरहवीं शताब्दी में हुआ था (पृष्ठ 19, 67)। ये सातवीं और आठवीं शताब्दी के हो सकते है और सुलतान ग़ारी के मकबरे के पास प्रारम्भिक मध्यकाल में एक बड़े मन्दिर की उपस्थिति का संकेत देते हैं । संभवत: इसे प्रतीहारों के किसी सामन्त ने बनवाया था। ये कलाकृतियां स्पष्ट रुप से इस बात का संकेत देती हैं कि सुल्तान ग़ारी के मकबरे के पास-पड़ोस में पूर्व मध्य काल से ही बस्ती बसी हुई थी क्योंकि मध्यकाल के स्तम्भों और आमलक-शिलापट्ट के अवशेषों की पहले से ही जानकारी प्राप्त हो चुकी थी। संभव है कि वास्तव में सुल्तान ग़ारी के मकबरे में पूर्व मुस्लिम युग से पहले के निर्माण के दो मुख्य चरण रहे हों-एक उत्तर गुप्त काल का जिसमें लाल बलुआ पत्थर का

प्रयोग हुआ है और दूसरा मध्यकाल का जब भूरे या लाल बलुआ पत्थर और संगमरमर का प्रयोग हुआ ।

बहुत सम्भव है तोमर राजपूतों ने दिल्ली के दक्षिण में अरावली पहाड़ियों पर अपने आपको प्रारंभ में कम से कम दसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों मे प्रतीहार शासकों के सामन्तों के रुप में व्यवस्थित कर लिया होगा। हरियाणा के करनाल जिले में पेहोवा से प्राप्त प्रारंभिक दसवीं शताब्दी के शिलालेखों में कुछ तोमरों के नाम एक तिहरे मन्दिर[1] के निर्माणकर्ताओं के रुप में आए हैं। ऐसा लगता है कि कन्नौज के राजा के ये कर्मचारी थे। परन्तु यह निश्चित नहीं है कि दिल्ली के तोमरों के साथ उनका कोई संबंध था। सीकर जिले में हर्षनाथ के दसवीं शताब्दी के अन्त के एक अन्य शिलालेख में भी उनका उल्लेख है [2]। हर हालत में दिल्ली के दक्षिण की सूनी और बंजर पहाड़ियां जहां पहुंचने में कठिनाई थी, उन्हें तोमरों ने मैदानों की तुलना में राजकीय आवास के लिए स्पष्टरुप से चुना था। बहुत संभव है कि ये उन्हें सुरक्षित आश्रय प्रदान करती थीं और यहां अन्य शत्रु राजपूत वंश उनपर बहुत कम आक्रमण कर पाते थे।

दिल्ली के निकट की इन पहाड़ियों में परन्तु आधुनिक हरियाणा की सीमा के भीतर तोमरों से संबद्ध कुछ महत्वपूर्ण निर्माण हैं। सूरजपाल जिसकी ऐतिहासिकता अन्य स्रोतों की तुलना में भाट परम्परा पर अधिक आधारित है सूरजकुंड नामक एक बड़े तालाब का निर्माता था (फलक 6, पृष्ठ 98)। उसी के दक्षिण में एक किलोमीटर आगे अड़ंगपुर या अनंगपुर गांव के समीप एक बांध है जिसके बारे में यह माना जाता है कि उसी वंश के अनंगपाल ने इसे बनवाया था (पृष्ठ 99)। उसके अड़ोस-पड़ोस में महलों

---

1 एपिग्राफिया इण्डिका, 1 (1892) पृष्ठ 242 से 250

2 वही, 2 (1894), पृष्ठ 116–30

और किलों के खण्डहर हैं जिससे इस लोकप्रिय विश्वास का कुछ आधार बनता है कि अड़ंगपुर एक प्राचीन बस्ती का उत्तरवर्ती गांव था, जिसे अनंगपाल ने बसाया था।

अनंगपाल को पृथ्वीराजरासो में अभिलिखित भाट परम्परा के अनुसार दिल्ली का संस्थापक बताया गया है यद्यपि यह परम्परा शायद बहुत पुरानी नहीं है। यह कहा जाता है कि उसने लाल कोट का निर्माण किया था जोकि दिल्ली का प्रथम सुविख्यात नियमित प्रतिरक्षात्मक निर्माण कार्य है और इसे दिल्ली के तथाकथित प्रथम नगर के अभ्यन्तर के रुप में माना जा सकता है (पृष्ठ 49)। यह भी विश्वास किया जाता है कि अनंगपाल ही लौह स्तम्भ (पृष्ठ 55) को दिल्ली में लाया था और उसने उसे लाल कोट में स्थापित किया था और जो मूलतः चौथी शताब्दी के प्रारम्भ में एक अनपहचाने विष्णु मन्दिर का ध्वज स्तम्भ था।

राजा विग्रहराज चतुर्थ लग० (1153-64) ने जो शाकंभरी (आधुनिक साम्भर) के चाहमान या चौहान वंश के विशाल देव या बीसल देव के नाम से जाना जाता है, राज्य भार संभालने के तुरंत बाद शायद तोमरों से दिल्ली छीन ली थी। अशोक के स्तम्भ पर अंकित ईसवी सन् 1163 या 1164 के एक लेख में, जो इस समय कोटला फिरोजशाह में है, विन्ध्य और हिमालय[1] के बीच की भूमि पर विग्रहराज के आधिपत्य का उल्लेख है।   उदयपुर जिले[2] के बिजोलिया के एक अभिलेख में उसके द्वारा दिल्ली पर अधिकार किए जाने का उल्लेख है जबकि अन्य अभिलेखों में दिल्ली पर तोमरों और चौहानों[3] द्वारा क्रमशः शासन किए जाने का उल्लेख है।

---

1 इण्डियन एण्टीक्वेरी, 19 (1890), पृ० 215-19

2 एपिग्राफिया इण्डिका, 26 (1841-42), पृ० 84-113

3 जरनल ऑव दि एपिग्राफिक सोसायटी ऑव बेंगाल, 43 (1874), पृ० 104-110; एपिग्राफिया इण्डिका, 1 (1892), पृ० 93-95. ; वही, 12 (1913-14), पृ० 17-27

विग्रहराज के पौत्र पृथ्वीराज तृतीय ने, जिसे राय पिथौरा के नाम से जाना जाता है और जो मुसलमानों के विरुद्ध हिन्दू प्रतिरोध की कहानियों का लोकप्रिय नायक रहा है, लालकोट का विस्तार उसके आस-पास पत्थरों की विशाल प्राचीरें और द्वार बना कर किया। यह दिल्ली का प्रथम नगर किला राय पिथोरा के नाम से विख्यात है। तोमरों और चौहानों ने लाल कोट के भीतर अनेक मन्दिरों का निर्माण किया और इन सभी को मुसलमानों ने गिरा दिया और उनके पत्थरों को मुख्यतः कुव्वतुल इस्लाम मस्जिद (पृष्ठ 51) के लिए पुनः इस्तेमाल किया गया। पत्थर की बनी विष्णु की एक चतुर्भुजी मूर्ति (फलक 5ख) हाल ही में कुतुबमीनार के दक्षिण पूर्व में पाई गई है जो सम्वत् 1204 ईसवी (सन् 1147) की है और इसे अब राष्ट्रीय संग्रहालय में प्रदर्शित किया गया है। एक लम्बे पत्थर का सरदल, जिसके दोनों ओर रामायण के दृश्य अंकित हैं, दिल्ली के उत्तर में 10 किलोमीटर की दूरी पर हैदरपुर के बाहरी हिस्से में पाया गया और शायद इसे बाद के काल में लाल कोट क्षेत्र से हटाया गया हो क्योंकि उस स्थल पर किसी भी समकालीन अवशेष का पता नहीं लग पाया है।

जब गोर के मुहम्मद बिन साम ने भारत पर आक्रमण किया उस समय दिल्ली पर पृथ्वीराज राज्य कर रहे थे। तरावड़ी की लड़ाई के मैदान में पृथ्वीराज के अधीन राजपूतों के राज्य संघ ने कम से कम एक बार तो इस आक्रमण को विफल कर ही दिया था। परन्तु उसने अगले वर्ष 1192 ईसवी में उसी युद्ध क्षेत्र में पृथ्वीराज को बुरी तरह से हरा दिया और वह मारा गया। इसके बाद मुहम्मद अपने गुलाम कुतबुद्दीन ऐबक को भारत में अपने राज्यपाल के रूप में छोड़कर अपने देश लौट गया। 1193 ईसवी में कुतबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली पर कब्जा किया जो अभी तक चौहानों के अधिकार में थी। बाद में 1206 ईसवी में मुहम्मद गोरी की मृत्यु के बाद लाहौर में उसने अपने आप को दिल्ली के पहले सुल्तान के रूप में सिंहासनारूढ़ किया। इस प्रकार दिल्ली मामलुक या गुलाम वंश की

राजधानी बनी, जो उत्तरी भारत पर शासन करने वाले मुस्लिम सुल्तानों का प्रथम देश था।

(घ) दिल्ली के प्राचीन नाम

यह विश्वास किया जाता है कि दिल्ली के प्रथम मध्यकालीन नगर की स्थापना तोमरों ने की थी, जो ढिल्ली या ढिल्लिका कहलाती थी यद्यपि ज्ञात अभिलेखों में ढिल्लिका का नाम सबसे पहले पूर्व उल्लिखित जिला उदयपुर में बिजोलिया के 1170 ईसवी के अभिलेख में आता है जिसमें दिल्ली पर चाहमानों द्वारा अधिकार किए जाने का उल्लेख है। 1276 ईसवी के पालम बावली के अभिलेख में जो गयासुद्दीन बलबन के शासन काल में लिखा गया था नगर का नाम ढिल्ली बताया गया है और जिस प्रदेश में यह स्थित है, उसे हरियानक[1] कहा गया है। दूसरा अभिलेख जो मुहम्मद तुगलक 1324-51 के शासन काल में 1328 ईसवी का है और जो अब लाल किले के संग्रहालय[2] में है उसमें भी हरियाना देश में ढिल्लिका नगर के होने का उल्लेख है। जिला डिडवाना के लाडनू में पाए गए 1316 ईसवी के एक प्रसिद्ध लेख में हरीतान प्रदेश[3] में धिल्ली नगर के होने का उल्लेख है। स्पष्ट है कि दिल्ली एक महत्वपूर्ण नगर था और शायद यह हरियाणा की राजधानी भी था। आधुनिक अंग्रेजी डेल्ही नाम दिहली या दिल्ली से निकला है, जो अभिलेखों के ढिल्ली का हिन्दी साम्य है। इसे देहली पढ़कर जो हिन्दी शब्द "देहरी" के लिए है यह दावा करना कि दिल्ली देश के द्वार को सूचित करता है, केवल काल्पनिक है।

---

1 जरनल ऑव दि एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल, भाग 43 (1874), पृ० 104-110

2 एपिग्राफिया इण्डिका, 1 (1892), पृ० 93-95.

3 वही, 12 पृ० 17-27.

दूसरा नाम योगिनीपुर पालम बावली के अभिलेख में ढिल्ली के वैकल्पिक नाम के रूप में आता है जिसमें पालम्ब गांव का भी उल्लेख है, स्पष्ट है कि यह आधुनिक पालम का नाम है। ढिल्ली और योगिनीपुर, ये दोनों नाम जैन पट्टावलियों में बार-बार आते हैं। मदनपाल नाम के एक राजा के बारे में उल्लेख है कि वह सम्वत् 1233 (ईसवी सन् 1166) में ढिल्ली या योगिनीपुर पर शासन कर रहा था[1]। चूंकि मदन और अनंग दोनों शब्द संस्कृत में पर्यायवाची हैं इसलिए यह सम्भावना है कि संदर्भित राजा अनंगपाल हो सकता है, किन्तु जिसका दिया गया काल गलत हो सकता है। जैन साहित्यिक परम्परा को इस तथ्य से कुछ बल मिलता है कि स्पष्टतः दिल्ली मध्यकाल में एक महत्वपूर्ण नगर था, जैसाकि कुव्वतुल इस्लाम मस्जिद में पुनः प्रयोग की गयी अनेक जैन मूर्तियों के वहां पाए जाने से प्रमाणित होता है। यह विश्वास किया जाता है कि योगिनीपुर का नाम मूलतः योगिनियों (अर्द्ध स्त्री-दैविक शक्तियों) के मंदिर से जुड़ा है जो कि अब मौजूद नहीं है परन्तु उसकी स्मृति मेहरौली के समीप वर्तमान जोगमाया के मन्दिर (पृष्ठ 59) के साथ सुरक्षित रखी गयी है। यह मेहरौली शब्द स्वतः "मिहिरपुरी" से निकला है और यह संकेत करता है कि एक सूर्य का मन्दिर शायद यहां रहा हो।

(ङ) दिल्ली के सुल्तान (1206-1526)

कुतबुद्दीन ऐबक द्वारा दिल्ली पर अधिकार किए जाने के समय से उसके इतिहास में एक नया पृष्ठ जुड़ गया। दिल्ली के जीवन के संपूर्ण रंग-ढंग में आक्रमणकारियों की संस्कृति और विश्वास का प्रभाव नजर आने लगा और उसका अनुभव उसे अगली साढ़े छः शताब्दियों तक होता रहा।

---

1 खरतरगच्छ बृहद्गुर्वावली, बंबई, 1956 पृष्ठ 21-22

कला की अन्य अभिव्यक्तियों की तुलना में यह नई संस्कृति वास्तुकला में स्वतः अधिक प्रदर्शित हुई। इस लम्बी अवधि के दौरान निर्मित अनेक भवनों के अवशेषों को बार-बार दिल्ली के सात नगरों के साथ समाहित किया जाता है परन्तु यह एक भ्रामक वर्णन है जिसके साथ दर्शक हजारों मस्जिदों, किलों, मकबरों, दीवारों और अबोधगम्य खंडित इमारतों सहित एक ऐसे दृश्य के साथ, जो बेतरतीब बिखरा पड़ा है, मुश्किल से ताल मेल बैठा पाता है। ऐसा लगता है कि इनमें से शायद ही कुछ एक सुसंगत योजना के अंतर्गत आते हैं जिससे एक नगर के होने का संकेत मिल सके। परन्तु ये स्मारक एक भव्य दृश्यपटल प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि इसमें प्राचीन नगर और इसके उपनगरों की पहचान में समान रूप से वर्तमान विस्तार से एक व्यवधान पड़ता है और ये संस्मारक भारतीय-इस्लामी वास्तुकला की तीन मुख्य शैलियों के दो उदाहरण प्रस्तुत करते हैं (पृष्ठ 7)।

कुतबुद्दीन ऐबक द्वारा राज्य शक्ति ग्रहण करने से लेकर मुगलों द्वारा दिल्ली पर अधिकार किए जाने तक दिल्ली पर पांच वंशों ने शासन किया। सुल्तानों के इन वंशों का शासन निम्न कालों में विभाजित किया जाता है।

1. गुलाम या मामलुक वंश, बलबन और उसके उत्तराधिकारियों सहित (1206-1290)
2. खलजी वंश (1290-1321)
3. तुगलक वंश (1321-1414)
4. सैयद वंश (1414-1444)
5. लोदी वंश (1451-1526)

(1) गुलाम या मामलुक वंश

कुतबुद्दीन ने अपने आपको 1206 में सुल्तान घोषित किया परन्तु उसने अपना वास्तुकला संबंधी कार्य पहले 1193 ईसवी सन् में प्रारम्भ कर

दिया था जब उसने दिल्ली पर अधिकार किया था और मुहम्मद गोरी ने उसे राज्यपाल नियुक्त किया था। अपने मूर्ति-भंजन उत्साह में विजेताओं ने दिल्ली के हिन्दू मन्दिरों को उजाड़ दिया। उनका उद्देश्य था कि वे उनके स्थान पर अपनी मातृभूमि के भवनों के अनुरूप निर्माण के सिद्धान्तों के आधार पर अपनी स्वतः की इमारतों का निर्माण करें परन्तु उन्हें अपने तौर-तरीकों की जानकारी रखने वाले कामगारों की कमी का सामना करना पड़ा। परिणाम यह हुआ कि गुलाम वंश की इमारतों में एक अनिश्चितता और कामचलाऊ प्रबन्ध से संतोष करना पड़ा, जिसमें से कुछ तो वास्तव में गिराये गए हिन्दू मंदिरों के वास्तु-खंडों से निर्मित की गयी थीं। उनकी प्रारम्भिक इमारतों में उन्हें स्वदेशी प्रस्तर पाद, सरदल या टोड़ों के रद्दों का इस्तेमाल जारी रखना पड़ा फलतः वास्तव में बाहरी हिस्से की सजावट में विशेष रूप से हिन्दू कारीगरों का हाथ प्राकृतिक अभिप्रायों का प्रयोग करता हुआ स्पष्ट रुप से दिखाई देता है। यद्यपि निर्माण और अलंकरण की दृष्टि से इन इमारतों में सजातीय सिद्धांतों का अभाव नजर आता है परन्तु रचनाएं प्रायः लालित्य और दृढ़ता से युक्त हैं जिसकी जड़ें इस भूमि में थीं।

लालकोट का तोमर नगर दुर्ग, जिसका बाद में चौहानों ने किला राय पिथौरा के रुप में विस्तार किया, दिल्ली के प्रथम नगर के नाम से विख्यात है, जिस पर कुतबुद्दीन ऐबक ने अधिकार किया था। उसने सत्ताईस हिन्दू और जैन मन्दिरों को गिरा दिया था और उनके नक्काशी किए गए स्तंम्भों, सरदलों, भीतरी छतों के पत्थरों और अन्य भागों से 1198 ईसवी में कुव्वतुल इस्लाम (इस्लाम की शक्ति) नामक मस्जिद को पूरा किया और उसे एक गलियारे युक्त आयताकार घेरे से घेर दिया (फलक 8)। बाद में उसने पश्चिम की ओर प्रार्थना कक्ष के सामने ऊंची-ऊंची मेहराबों सहित एक शानदार चिलमन भी लगा दी (फलक 7)। मेहराबों को टोड़ों के रद्दों से बनाया गया यद्यपि मेहराबों के सिरों के समीप डाट पत्थरों की आकृति में पत्थरों के बिछाने का कमजोर प्रयास किया गया। चिलमन की सजावट में हिन्दू कारीगरों का हाथ स्पष्ट रुप से दिखलाई पड़ता है। न केवल यह

उसके सर्पिल प्रतानों और लहराते हुए पत्तों में ही दिखाई पड़ता है बल्कि यह कुरान संबंधी अभिलेखों के स्वरूपों के घुमावों में भी दिखाई देता है।

बारहवीं सदी के अन्तिंम वर्ष में कुतबुद्दीन ने कुतुबमीनार की आधारशिला रखी (फलक 9 और 10 क पृष्ठ 53) जो भारत का सबसे ऊंचा बुर्ज यानि ऊंचाई में 72.5 मीटर है। संभवतः दोनों विजय स्तम्भ के रूप में और प्रार्थना के लिए निष्ठावानों को बुलाने के लिए मुआज्जिन के लिए मस्जिद के साथ मीनार जोड़ी गई थी, जिसे कुतबुद्दीन के उत्तराधिकारी और उसके दामाद शम्सुद्दीन इल्तुतमिश (1211-36) ने पूरा किया था जिसने चिलमन सहित मस्जिद को बड़ा भी कर दिया था। उसके चिलमन के मेहराब अब भी टोड़ेदार हैं। यद्यपि उनका अरबी अलंकरण सारासिनिक (जिहाद संबंधी) है जो कुतबुद्दीन की चिलमन के मिले जुले अलंकरण से अलग है। उसका चौकोर मकबरा अपनी गुम्बद सहित (पृष्ठ 56) जो अब मौजूद नहीं है, अन्दर की ओर लेखों और ज्यामितीय अलंकरणों से प्रचुररूप से नक्काशीयुक्त है तथा कुछ अलंकरण हिन्दू अभिप्रायों की अपनी समृद्धि का स्मरण कराते हैं, परन्तु हिन्दू परम्परा से प्राप्त जो अभिप्राय हैं उन्हें छोड़कर व्यापक रूप से लगभग पूर्णतः जिहाद संबंधी है। इल्तुतमिश ने 1231 में एक मकबरा अपने सबसे बड़े बेटे और युवराज शहजादे नासिरुद्दीन के लिए बनवाया था जिसका देहान्त अपने पिता के जीवन काल में ही 1228-29 में हो गया था। अपने शव गृह (फारसी ग़ार) के नाम से विख्यात सुल्तान ग़ारी का मकबरा जिला कच्छ के कुछ पूर्व सल्तनत काल के मकबरों को छोड़कर सब से प्राचीनतम मुस्लिम मकबरा है और इसे गिराए गए हिन्दू मंदिरों से प्राप्त वास्तुकला संबंधी खंडों से बनाया गया था । उसकी मेहराबें और मेहराबी छतें अभी तक टोड़ेदार हैं जबकि उसके कक्ष और गलियारे स्तंभों, टेकों और शहतीरों से निर्मित हैं।

इल्तुतमिश ने अपनी बेटी रजिया को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था परन्तु उसके दरबारियों ने उसके सबसे बड़े जीवित बेटे रुकनुद्दीन

फिरोज को सिंहासन पर बैठाया। उसने लगभग छह माह तक शासन किया जब उसकी प्रजा ने उसके विरुद्ध बगावत कर दी और 1236 में शाहजादी को राजसिंहासन पर बैठाया गया जो दिल्ली के तख्त पर बैठने वाली पहली महिला थी। उसे जिला करनाल के कैथल नगर में 1240 में मार डाला गया और वहां एक कब्र है जिसके बारे में यह बताया जाता है कि उसमें उसके जिस्मानी अवशेष हैं। दूसरी ओर बिना छत की पत्थर की दीवार का एक अहाता दिल्ली में बाद के नगर शाहजहाँनाबाद के भीतर है जिसके बारे में बहुत से लोगों द्वारा यह माना जाता है कि यह रजिया की असली कब्र है (पृष्ठ 142)।

कुतबुद्दीन की वंशावली में अन्तिम सुल्तान नासिरुद्दीन कट्टर रूप से धर्मान्ध था और वह राजकाज की ओर अधिक ध्यान नहीं देता था। उसने उलुगखां बलबन, जो प्रारंभ में इल्तुतमिश के गुलामों में से एक था और अब नासिरुद्दीन का श्वसुर और मंत्री था, पर ही सारा राजकाज छोड़ दिया था। वारिस न होने सें बलबन (1265-87) नासिरुद्दीन का उत्तराधिकारी बना। उसका वंश 1290 में उसके पश्चात् दो उत्तराधिकारियों के शासन के बाद आकस्मिक रूप से समाप्त हो गया।

हालांकि यह माना जाता है कि बलबन का एक महल दिल्ली में था, परन्तु अभी तक इसकी पहचान नहीं हो पायी है। एक साधारण-सा अनगढ़े पत्थरों से बना चौकोर मकबरा, जो कुतुबमीनार से अधिक दूर नहीं है और जो जीर्ण-शीर्ण और गुंबदरहित है उसके बारे में माना जाता है कि वह उसका मकबरा है और यह पहला मुस्लिम स्मारक है जिसमें सबसे पहले वास्तविक मेहराब (ट्रू आर्च) का इस्तेमाल हुआ था।

लगभग 1287 में बलबन का उत्तराधिकारी मुइज्जुद्दीन कैकुबाद अपनी राजधानी यमुना के किनारे किलोकरी में ले गया। वर्तमान जामियां मिलिया के पड़ोस में स्थित ओखला नहर के हेडवर्क के समीप यह राजधानी अब केवल कुछ मिट्टी के टीलों और खण्डहरों के रूप में बची है।

(2) खलजी वंश

फिरोजशाह, जो दिल्ली दरबार में खलजी कबीले का एक अफगानी तुर्क था, उसने शम्सुद्दीन कैमूर्स से जो बलबन वंश का आखिरी बादशाह था 1290 में राजसिंहासन छीन लिया। उसने जलालुद्दीन खलजी की उपाधि ग्रहण की । खलजी वंश के छह शासकों में इस वंश का तीसरा बादशाह अलाउद्दीन 1296 में राजगद्दी पर बैठा और वह न केवल अपने राजनीतिक कारनामों के लिए ही प्रसिद्ध था बल्कि अपनी वास्तुकला संबंधी महत्वाकांक्षाओं और उपलब्धियों के लिए भी प्रसिद्ध था । यह ऐसा समय था जबकि पश्चिम एशिया में सलजुकों का साम्राज्य मंगोलों के लगातार हमलों के कारण छिन्न-भिन्न हो रहा था और उनके दरबारी, कवि, कलाकार, वास्तुकार और कारीगर पास-पड़ोस के देशों में आश्रय ले रहे थे। उनमें से कुछ ने निस्संदेह दिल्ली दरबार का आश्रय ढूंढ़ा और वे अपने साथ सलजुकी वास्तुकला की परम्पराओं को लाए जिसके परिणाम स्वरूप मेहराब के अन्दरुनी भाग पर "कमल की कली" की पंक्ति खलजी भवनों में ऐसी दिखलाई देती है जिसे भूल से स्पष्टतः चिनाई-रुप में, एक "बरछे की नोक" वाली धारी दार चाप स्कंधों में विविधता के साथ अलंकरण संबंधी अभारों तथा सीमित "सिरों" और बृहत् लम्बे रखे ईंटों के वैकल्पिक रद्दों के रुप में वर्णित किया गया है। इस्लामी वास्तुकला में आरंभिक प्रयोग और काम चलाऊ प्रबंध का चरण अब समाप्त हो चुका था और उसने अब अपने तौर-तरीकों और विशेष लक्षणों का विकास कर लिया था। वास्तविक मेहराब का प्रयोग जो अधिकत्तर नुकीली घोड़े की नाल के आकार, बड़ी गुम्बद, बगली डाटों के नीचे आलेदार मेहराब, छेदयुक्त रोशनदान, सजावटी गढ़त, उथले विविधता वाले एक से दूसरे जुड़े अलंकरण आदि लेखीय पट्टों और लाल बलुआ पत्थर का संगमरमर के स्थान पर जो प्रयोग हुआ है, वे इसकी कुछ विशेषताएं हैं जो खलजी वास्तुक्ला को लक्षित करती हैं।

अलाउद्दीन ने दिल्ली की कुव्वतुल इस्लाम मस्जिद का उसके अहाते और चिलमन में वृद्धि करके विस्तार किया। उसके द्वारा इसके बनाए गए मुख्य द्वारों में से केवल दक्षिणी मुख्य द्वार, जिसे "अलाई दरवाजा" कहते है पूरी तरह से बचा है (फलक 11)। अश्व नाल के आकार की एक मेहराब के नीचे "कमल की कलियों" की पक्ति यहाँ पहली बार दिखाई पड़ती है और सर्वत्र लाल पत्थर को भंग करने वाले संगमरमर की अभिलिखित पट्टियों का प्रयोग किया गया है (फलक 10ख)। उसने विस्तारित कुव्वतुल इस्लाम मस्जिद के भीतर एक दूसरी मीनार का निर्माण करना शुरु कर दिया जिसकी मुश्किल से पहली ही मंजिल बन पाई थी कि उसकी मृत्यु हो गई। उसने इस मस्जिद को आकार में दुगुना कर दिया और उसकी इच्छा थी कि उसकी मीनार भी कुतुब मीनार से आकार में दुगुनी हो। अमीर खुसरो की "तारीख-ए-अलाही" में लिखा है कि अलाउद्दीन ने हुक्म दिया था कि पुरानी मीनार में खोल और छतरी की व्यवस्था हो[1]। मीनार पर अंकित एक नागरी लेख में निश्चय ही यह उल्लेख है कि अलाउद्दीन ने इस बुर्ज की कुछ मरम्मत कराई थी क्योंकि इसमें इस मीनार को अलाउद्दीन के विजय स्तंभ[2] के रूप में बताया गया है। वह 1316 में मर गया और यह विश्वास किया जाता है कि मस्जिद के दक्षिण-पश्चिम में बनी एक इमारत उसका मकबरा है जिसके साथ ही उसके द्वारा निर्मित एक मदरसा भी है ।

---

1. एच० एम० इलियट, दि हिस्ट्री ऑव इण्डिया ऐज टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियन्स, खण्ड 3, इलाहाबाद, पृ० 70

2. एम० सी० जोशी, 'सम नागरी इन्स्क्रृप्शन्स ऑन दि कुतुबमीनार', मेडिवल इण्डिया – ए मिस्लेनी, अलीगढ़, खण्ड 2, पृ० 3

1303 ईसवी में अलाउद्दीन ने सीरी की आधार शिला रखी जो दिल्ली का दूसरा नगर था परन्तु मूलतः मुसलमानों द्वारा बनवाया गया पहला नगर था। अब यह केवल अपनी मोटी दीवारों के फैलाव के रूप में है जिनमें "लपटों" के आकार जैसी फसीलों की व्यवस्था है जो कि पहली बार यहां दिखलाई पड़ती है। उसने आधुनिक हौज-खास के समीप एक बड़ा तालाब खुदवाया जो प्रारंभ में हौजे-अलाई के नाम से जाना जाता था और यह सीरी के नागरिकों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बनाया गया था।

कहा जाता है कि अलाउद्दीन के शासन काल में उसके बेटे खिज्र खां ने जमात-खाना मस्जिद का निर्माण किया था जो हजरत निजामुद्दीन औलिया की दरगाह के समीप है। उसके बलुआ पत्थरों के पार्श्वों, दबे गुंबद, मेहराबों की "कमल की कली" वाली धारियां, आलेदार बगल डाट वाली मेहराबें कुरानयुक्त अभिलेखों के ढांचे तथा वैकल्पिक चौड़े तथा संकीर्ण रद्दे ऐसी विशेषताएं हैं जो अलाई दरवाजा की याद कराते हैं।

(3) तुगलक वंश

अन्तिम खलजी कुतबुद्दीन मुबारक खां, जो अलाउद्दीन का तीसरा बेटा था, उसे सुल्तान के चहेते एक हिन्दू से मुसलमान बने नीच जाति के हिन्दू खुसरो खां ने मार डाला जिसे अलाउद्दीन ने अपना वजीर बनाया था। तुगलक कबीले के एक तुर्क कुलीन पुरुष गाजी मलिक ने, जो उस समय पंजाब के देबलपुर में सूबेदार था और जिसकी वफादारी अपने खलजी सल्तनत के प्रति असीम थी, खुसरो खां के विरुद्ध चढ़ाई कर दी और उसका सिर कलम कर दिया। खलजी खानदान में किसी भी पुरुष के जीवित न बचने से उसने स्वयं को गयासुद्दीन तुगलक के नाम से 1321 में सुल्तान घोषित कर दिया, उसे तुगलक शाह के नाम से भी जाना जाता है ।

तुगलक वंश के ग्यारह बादशाहों में से केवल पहले तीन ही वास्तुकला में दिलचस्पी रखते थे और इनमें से हरेक ने दिल्ली में एक नया राजधानी का नगर जोड़ा। खलजियों के अधीन वास्तुकला का परिमाण, लालित्य और अलंकरण की दृष्टि से एक प्रामाणिक अनुपात तय होना शुरू हुआ तथा भूरे, बादामी सतहों के स्थान पर लाल रंग के उपयुक्त प्रयोग को तरजीह दी जाने लगी। परन्तु अतिनैतिक तुगलकों के कारण यह व्यवस्था बदल दी गयी। उनकी इमारतों की विशेषताएं हैं भूरे पत्थर के सीधे-सादे और कठोरतल, बड़े बड़े कमरों के ऊपर मेहराबी छतों का होना भीतरी ओर पुश्तेदार ढालू दीवारें और मुख्यरुप से कोनियों पर बुर्ज, चार केन्द्रित मेहराबें और खुले भागों पर सरदलों का होना । मिट्टी या ईटों से बनी मोटी दीवारों के लिए बाहरी ओर ढालू बनाना आवश्यक था परन्तु वह पत्थर की दीवार के लिए जरुरी नहीं था। इस पद्धति को तुगलकों ने सम्भवतः सिंध, पंजाब या अफगानिस्तान से लिया था जहां गारे या ईटों का इस्तेमाल होता था।

तुगलकों की इमारतों में अलंकरण के तत्वों की कमी होने से उन्हें प्रायः यह लाभ हुआ कि अत्यधिक प्रभावशाली परिणाम प्राप्त करने के लिए पलस्तर या गच पर चाप स्कंधों में अवसर उत्कीर्ण किनारे और मंडल तैयार किए गये। सीधा सादा आकार, जो नीरस लगता था, की जगह दग्ध टाइलों का प्रयोग किया गया, जिनका प्रचलन पहली बार तुगलक काल में हुआ था। तुगलक बादशाह बांध और तटबंधों का निर्माण करके वर्षा का पानी सिंचाई के लिए एकत्र करने में भी रुचि रखते थे और इनमें से कुछ अभी तक बाकी बचे हैं।

गयासुद्दीन तुगलक (1321-1325) ने दिल्ली के तीसरे किले बन्द नगर (पृष्ठ 99) तुगलकाबाद का निर्माण किया। सुनसान पहाड़ियों पर खड़ा भूरे रंग के अनगढ़े पत्थर की ढलानदार दीवारों वाला किला तुगलकाबाद (फलक 12 क) जहां इसकी स्थिति को एक प्राकृतिक लाभ प्राप्त है, अपने नगर और दुर्ग सहित वास्तुकला संबंधी महत्त्वाकांक्षाओं वाले

एक महानगर के बजाय एक गढ़ के रूप में बनाया गया था। दक्षिण में उसके मुख्य द्वार के उस पार गयासुद्दीन का मकबरा (फलक 2ख पृष्ठ 101) है जो लाल बलुआ पत्थर की संगमरमर का कुछ इस्तेमाल करते हुए बनाई गई इमारत असामान्य पंचभुज आकार वाली तथा अनगढ़े पत्थरों से निर्मित किले जैसी दीवार के भीतर है। तीन दिशाओं में अपने मेहराबी द्वारों के नीचे "कमल की कली" वाली पंक्ति और अपनी रंग योजना सहित खलजी वास्तुकला की कुछ विशेषताओं से युक्त है, यद्यपि इसके निर्माण के समय कुछ नई विशेषताओं जैसे ऊपरी भाग में दुहरे विपरीत घुमाव सहित मेहराब जो "ट्यूडोर" मेहराब से मिलती जुलती है, कुछ शंक्वाकार "तारतार" गुम्बद और द्वारों के लिए शहतीर-मेहराब का प्रयोग हुआ है । प्रारम्भ में यह किलानुमा मकबरा वर्षा के पानी के एक विशाल कृत्रिम जलाशय के भीतर खड़ा था जिसे तटबंधों सहित पर्वत स्कंधों को मिलाकर पानी को अवरुद्ध करके बनाया गया था और इसे एक उपसेतु द्वारा तुगलकाबाद से जोड़ा गया था जिसे काटते हुए अब कुतुब-बदरपुर सड़क गुजरती है।

गयासुद्दीन के उत्तराधिकारी मुहम्मद बिन तुगलक ने (1325-51) तुगलकाबाद के दक्षिण में पहाड़ियों पर आदिलाबाद का छोटा किला बनवाया (पृष्ठ 100) जिसके साथ निर्माण की मुख्य विशेषताएं मिलती जुलती हैं। उसने दिल्ली के चौथे नगर जहाँपनाह (पृष्ठ 72) का भी निर्माण किया-जो काफी हद तक किला राय पिथौरा और सीरी के बीच एक दीवारनुमा अहाता था ताकि वहां रहने वाली उसकी प्रजा को संरक्षण दिया जा सके। परन्तु तुगलकाबाद मुख्य शहर था और यहीं से मुहम्मद ने न केवल राजधानी का स्थानांतरण किया था बल्कि वह दिल्ली की पूरी आबादी को दक्षिण में दौलताबाद ले गया था और बाद में उन्हें वापस ले आया था।

अगला शासक फिरोजशाह (1351-88) इतिहास, शिकार, सिंचाई और वास्तुकला का शौकीन था। उसने अनेक शहरों की बुनियाद डाली। दिल्ली और आस पास नई इमारतें बनाने के अलावा उसने पुरानी इमारतों, जैसे सुल्तान गारी का मकबरा (पृष्ठ 68), कुतुबमीनार (पृष्ठ 53) और

सूरजकुंड (पृष्ठ 98) की भी मरम्मत करवायी थी। उसके शासन काल में कुछ नई वास्तुकला संबंधी विशेषताओं का प्रचलन हुआ, उनमें हैं-मस्जिदों पर उथले गुम्बदों का सिलसिला और छत या खुले आंगन के आसपास पत्थर के जंगले लगवाना। अशोक के दो उत्कीर्ण किए गए स्तम्भ, जिनमें एक अम्बाला के निकट टोपरा और दूसरा मेरठ के निकट था, उस समय तक नहीं पढ़े गए थे। उन्होंने उसकी जिज्ञासा को जाग्रत किया और वह उन्हें दिल्ली ले आया और उसने दिल्ली में उन्हें खड़ा किया। इनमें से पहला स्तम्भ उसकी नई राजधानी में (पृष्ठ 128) और दूसरा पर्वत श्रेणी (रिज) पर (पृष्ठ 134) अपने शिकार - गाहके समीप जो पीर - गायब के नाम से विख्यात है लगवाया।

उसकी नई राजधानी, जो फिरोजाबाद कहलाती थी, दिल्ली का पांचवां नगर था जिसके दुर्ग के चतुष्कोण अब कोटला फिरोजशाह के नाम से विख्यात हैं और जो ऊंची-ऊंची दीवारों का एक बड़ा अहाता है जिसके पास से उस समय नदी बहती थी। पश्चिम की ओर एक सुरक्षा-प्राचीर युक्त मुख्य-द्वार था और अन्दर महल, स्तंभों पर टिके बड़े कमरे, मस्जिदें, एक कबूतर बुर्ज और एक बावली है जिनमें से कुछ अभी भी अच्छी हालत में हैं। इनमें अशोक के स्तंभ वाला पिरामिडीय भवन और जामे मस्जिद (पृष्ठ 129) उस काल में भी काफी प्रसिद्ध थे। यह वास्तविकता कि राजधानी को हटाकर नदी के किनारे लाया गया, इस बात का संकेत करती है कि मुसलमानों की शक्ति अब सुदृढ़ हो गई थी और वे काफी समृद्ध हो गए थे जिससे यह आवश्यक हो गया कि परिवहन और संचार के लिए नदी का प्रयोग किया जाए।

फिरोजशाह ने दिल्ली के आसपास कई शिकारगाहें बनवाईं जिनमें से कुछ जैसे मालचा महल (पृष्ठ 94) भूलीभटियारी का महल (पृष्ठ 94) और पीर गायब (पृष्ठ 133) पर्वत श्रेणी (रिज) पर हैं। उसका दूसरा शौक सिंचाई था। एक बड़ा जलाशय हौजे-अलाई, जिसे पहले अलाउद्दीन खलजी ने बनवाया था और अब वह खंडहर था उसकी उसने मरम्मत

करवाई और उसके दक्षिण पश्चिमी कोने में एक मदरसा या कालेज के रूप में दो मंजिले लम्बे हाल बनवाए (फलक 14 ख, पृष्ठ 78)। यह स्थान, जिसे अब हौज खास के नाम से जाना जाता है, इसमें उसका मकबरा एक आकर्षक गुम्बद सहित एक भव्य इमारत के रूप में अवस्थित है। दूसरा तटबंध जो उसने बनवाया था महीपालपुर के पास पाया गया है (पृष्ठ 69), जहां उसने एक शिकारगाह का निर्माण किया था।

फिरोजशाह के शासन काल में दिल्ली में अनेक मस्जिदें बनीं। मकबूल खां के बेटे खान-ए-जहां जूनांशाह को, जिसके बाप की उपाधि भी खान-ए-जहां थी और जो हिन्दू से मुसलमान बना था और जो फिरोजशाह का वजीरे-आजम बन गया, सात मस्जिदों का निर्माण करवाने का श्रेय प्राप्त है जिनमें से तुर्कमान गेट के समीप काली या कलां मस्जिद (पृष्ठ 141), निजामुद्दीन में उसी नाम की दूसरी मस्जिद (पृष्ठ 115), खिड़की की मस्जिद (फलक 15, पृष्ठ 75) तथा बेगमपुरी मस्जिद (फलक 19 क, पृष्ठ 65) प्रसिद्ध हैं। दो काली मस्जदों में अभिलेख हैं और यह निश्चित है कि इन्हें इसके बेटे ने बनवाया था लेकिन यह निश्चित नहीं है कि अन्य मस्जिदों का निर्माण बेटे ने या बाप ने करवाया था। इन सभी मस्जिदों की, यह विशेषता है कि इनमें छज्जे हैं, कोनों तथा प्रवेश द्वार पर उथले गुम्बद और ढलुआँ मीनारें हैं। खिड़की और काली मस्जिदों के आंगन, जिनमें से दूसरी निजामुद्दीन में स्थित है, चौकोर बने हुए हैं, जिनमें से कुछ पर छतें हैं और अन्य बिना ढके हैं ताकि रोशनी आ सके।

खान-ए-जहां तिलंगानी, जो स्पष्टत: फिरोजशाह का वजीरे-आजम मकबूल खां ही था, का मकबरा (पृष्ठ 116) भी निजामुद्दीन में ही है। यह एक गुम्बदयुक्त अष्टभुजाकार कक्ष है जो एक बरामदे से घिरा हुआ है और जिसके किनारों में से हरएक में तीन मेहराब हैं। यह दिल्ली में पहला अष्टभुजाकार मकबरा है, इससे पहले के कुछ मकबरे जो यद्यपि कुछ भिन्न प्रकार के हैं मुल्तान में बनाए गए थे। बाद में यह शैली सैयद और लोदी वास्तुकला में एक विशेषता बन गयी ।

1388 में फिरोजशाह तुगलक की मृत्यु के बाद यह सल्तनत राजनीतिक दृष्टि से अस्थिर हो गई। 1396 में फिरोजशाह के एक पौत्र नुसरतशाह ने महमूद तुगलक से गद्दी छीन ली। यद्यपि 1399 में नुसरतशाह के कत्ल के बाद वह राजगद्दी पर फिर वापिस लौट आने में सफल हो गया। तैमूर लंग ने 1398 में भारत पर आक्रमण कर दिया और दिल्ली शहर को बेरहमी से लूटा और उसे उजाड़ दिया। वह अगले वर्ष लौट गया था परन्तु देश काफी समय तक संभल नहीं पाया और अमीर और प्रांतीय सूबेदार एक दूसरे के खिलाफ तथा सुल्तान के खिलाफ युद्ध करते रहे। इस प्रकार की राजनीतिक अस्थिरता और तैमूर के आक्रमण के दीर्घकाल तक बने रहे प्रभावों के कारण वास्तुकला संबंधी क्रियाकलाप लगभग समाप्त हो गए।

(4) सैयद वंश

1413 में महमूद तुगलक की मृत्यु के बाद दरबारियों ने अपनी वफादारी दौलतखां लोदी की ओर दिखलाई जिस पर 1414 ईसवी में पंजाब के सूबेदार खिज्रखां ने हमला किया और उसे बन्दी बना लिया। खिज्रखां राजगद्दी पर बैठा और उसने सैयद वंश की नींव रखी। 1444 ईसवी तक इसके वंश के चार शासकों ने एक के बाद एक लगातार शासन किया परन्तु देश में खुशहाली नहीं आई। कला और वास्तुकला को कोई संरक्षण नहीं मिला। जैसा कि पिछले राजवंशों में हुआ था उसी प्रकार किसी नगर, महल या मस्जिदों का निर्माण भी नहीं हुआ। केवल मृतकों को दफनाने के लिए मकबरे बनवाए गए गोया कि यह प्रचलित डरावने वातावरण के साथ मुकाबला करने के लिए किया गया हो।

फिर भी इन मकबरों में से कुछ का वास्तुकला की दृष्टि से कुछ कम महत्व नहीं है। ये मकबरे दो प्रकार के हैं, एक अष्टभुजाकार और दूसरे चौकोर। पहली शैली का प्रारम्भ तुगलक काल में खान ए-जहां तिलंगानी के

मकबरे से हुआ था (पृष्ठ 116)। दूसरे प्रकार के निर्माण में एक विशिष्ट सम्मुख छवि वाले भवन का निर्माण हुआ जिसमें उसके अग्रभाग को रस्सी जैसे अलग ऊपर तथा नीचे गहरे आलों के दिलहों की श्रृंखला बनाकर निर्मित किया गया ताकि इसे दो या तीन मंजिलों की प्रतिकृति दी जा सके। इन मकबरों में प्रत्येक भुजा का मध्य भाग ऐसे प्रक्षेपित हुआ है कि जिससे यह एक खड़ा आयत बन जाता है जिसके भीतर मुख्य मेहराब, एक शहतीर और टेकवाला प्रवेश द्वार और उसके ऊपर एक छोटी खुली हुई खिड़की है जो दीवार की पूरी ऊंचाई को करीब-करीब समाहित कर लेते हैं। इस आयत की भुजाओं और इमारत के कोनों पर कलश जैसे गुलदस्ते लगे हैं। प्रवेश द्वार के दोनों ओर एक-एक मेहराब खुली है या प्रकाश आने देने के लिए इसमें जालीदार पर्दा लगा है परन्तु वैसी ही दूसरी मंजिल का आभास देने वाली मेहराब नकली हैं और बंद हैं। ये चौकोर मकबरे अष्ठभुजाकार मकबरों से ऊंचे हैं, यद्यपि भूमि योजना में अष्टभुजाकार मकबरे अधिक विस्तृत क्षेत्र को घेरते हैं।

दुर्भाग्य से इन चौकोर मकबरों में दफन किए गए व्यक्तियों की पहचान नहीं हो पायी है और यह समझा जाता है कि इनमें अमीरों-उमरावों के अवशेष हैं जबकि बादशाहों को अष्ठभुजाकार मकबरों में दफनाया गया था। दूसरी ओर यह संभावना लगती है कि लोदी काल में चौकोर योजना लोकप्रिय हो गई थी क्योंकि मुबारक खां का मकबरा जो इस प्रकार का पहला उत्कीर्ण मकबरा है और जो काले खां का गुम्बद (पृष्ठ 85) के नाम से लोकप्रिय है, लोदी शासन के दौरान 1481 ईस्वी का है।

यह कहा जाता है कि खिजखां के बेटे और उसके उत्तराधिकारी मुइज़ुद्दीन मुबारक शाह ने यमुना के साथ एक शहर मुबारकाबाद की स्थापना की थी परन्तु अब इसका कोई नामोनिशान नहीं है। उसकी मृत्यु 1434 में हुई और वह कोटला मुबारकपुर (पृष्ठ 86) में दफन है। उसका मकबरा जिसकी रचना अष्टभुजाकार है और जिसमें मध्य कक्ष और

चतुर्दिक बरामदे हैं और जिसके हर भुजा में तीन द्वार हैं इस शैली का एक स्पष्ट नमूना है। यद्यपि यह अपने चौड़े गुम्बद और तुगलक शैली के ढलुआं वाले कोनों से युक्त है।

मुहम्मदशाह, जिसकी मृत्यु 1444 ईसवी में हुई, का मकबरा लोदी गार्डन में है (पृष्ठ 89)। यद्यपि एक अष्ठभुजाकार समतल पर बने इस मकबरे का मध्य भाग उठा हुआ है और इसी प्रकार इसकी छतरियों की ऊंचाई है जिसके फलस्वरुप यह मुबारकशाह के मकबरे से अधिक आकर्षक लगता है।

(5) लोदी वंश

मुहम्मद शाह सैयद के शासन काल में (1434-44) सरहिन्द के अफगान सूबेदार बहलोल लोदी ने पंजाब के बाहर अपने प्रभाव को बढ़ा लिया था और वह लगभग स्वतंत्र हो गया था। मुहम्मद शाह का पुत्र और उसका उत्तराधिकारी अलाउद्दीन आलम शाह दिल्ली के शासन का भार अपने एक साले के भरोसे छोड़कर और शहर-पुलिस के अधीक्षक का भार दूसरे साले पर छोड़कर बदायूं चला गया। परन्तु दोनों ही अलग-थलग पड़ गए और 1451 में बहलोल लोदी ने सिंहासन पर कब्जा कर लिया। यद्यपि प्रारम्भ में उसने यह दिखाया कि वह आलमशाह की ओर से शासन चला रहा है।

बहलोल (1451-89) ने राजनैतिक क्षेत्र में किसी प्रकार से कुछ व्यवस्था स्थापित की थी परन्तु अधिकांश रूप से वह जौनपुर के प्रांतीय शासक और अन्य सरदारों को दबाने में ही लगा रहा। उसके उत्तराधिकारी सिकन्दर और इब्राहीम भी इसी प्रकार व्यस्त रहे। ऐसी परिस्थितियों में नई इमारतें निर्माण करने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं मिला और जो कुछ

लोदियों ने छोड़ा है वे केवल कुछ मकबरे है उन दो शैलियों में जो सैयद काल के समय में प्रचलित हो गई थीं। सबसे सरलतम जो अष्टभुजाकार मकबरा है वह एक खुले स्तंम्भों वाला शामियाना है और इनमें से बहुत से दिल्ली के आसपास पाये जाते हैं। परन्तु इस विशिष्ट संरचना का अनुकरण अकबर के शासनकाल तक जारी रहा, किन्तु तब तक शाही मकबरों का रचना प्रकार कुछ अलग हो गया था। दिल्ली में चौकोर किस्म के अनेक मकबरे हैं, उनमें से कई एक हौजखास और जमरूदपुर के बीच फैले हुए है परन्तु इनमें जिन लोगों को दफन किया गया है उनकी पहचान नहीं हो पायी है। लोदी गार्डन स्थित शीश गुम्बद में उपर्युक्त नमूना अपनाया गया है (पृष्ठ 29), इसे चमकीली टाइलों से सजाया गया है, जिसके कारण ही उसे वर्तमान नाम "कांच का गुम्बद" मिला है (पृष्ठ 91)।

चिराग दिल्ली स्थित बहलोल लोदी का मकबरा एक अलग श्रेणी में आता है। यह एक मामूली चौकोर ढांचा है जिसके प्रत्येक पार्श्व में तीन मेहराबयुक्त खुले द्वार हैं और छत पांच गुम्बदों से ढकी हुई है (पृष्ठ 77)। सिकन्दर (1489-1517) अधिकतर आगरा में ही रहा और वहां उसने कुछ इमारतें बनाईं जिन्हें उसी के नाम से सिकन्दरा का नाम मिला। 1501 में उसके शासन काल के दौरान दिल्ली में शिहाबुद्दीन खां का मकबरा बना जिसे बागे आलम का गुम्बद भी कहते हैं और जिसमें चौकोर मकबरों के निर्माण के सामान्य मानदंड को अपनाया गया है (फलक 16 क, पृष्ठ 80)। परन्तु दिल्ली में उसका जो मकबरा है (फलक 16 ख, पृष्ठ 92)। वह अष्टभुजाकार मकबरे के विकास के अन्तिम चरण का उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह विशेष मकबरा उन्हीं लक्षणों को रखे हुए है जोकि मुहम्मद शाह के मकबरे में मौजूद हैं। यह ऊंची दीवारों से घिरे एक बड़े चौकोर बगीचे के भीतर स्थित है जिसके पश्चिम में एक कनाती मस्जिद और दक्षिण में एक सजावटी द्वार की व्यवस्था की गई है। यह मस्जिद और चौकोर बगीचे के घेरे की यह विशेषता बाद में मुगल मकबरों के अभिलक्षण बन गए।

लोदियों ने छोड़ा है वे केवल कुछ मकबरे है उन दो शैलियों में जो सैयद काल के समय में प्रचलित हो गई थीं। सबसे सरलतम जो अष्टभुजाकार मकबरा है वह एक खुले स्तंम्भों वाला शामियाना है और इनमें से बहुत से दिल्ली के आसपास पाये जाते हैं। परन्तु इस विशिष्ट संरचना का अनुकरण अकबर के शासनकाल तक जारी रहा, किन्तु तब तक शाही मकबरों का रचना प्रकार कुछ अलग हो गया था। दिल्ली में चौकोर किस्म के अनेक मकबरे हैं, उनमें से कई एक हौजखास और जमरूदपुर के बीच फैले हुए है परन्तु इनमें जिन लोगों को दफन किया गया है उनकी पहचान नहीं हो पायी है। लोदी गार्डन स्थित शीश गुम्बद में उपर्युक्त नमूना अपनाया गया है (पृष्ठ 29), इसे चमकीली टाइलों से सजाया गया है, जिसके कारण ही उसे वर्तमान नाम "कांच का गुम्बद" मिला है (पृष्ठ 91)।

चिराग दिल्ली स्थित बहलोल लोदी का मकबरा एक अलग श्रेणी में आता है। यह एक मामूली चौकोर ढांचा है जिसके प्रत्येक पार्श्व में तीन मेहराबयुक्त खुले द्वार हैं और छत पांच गुम्बदों से ढकी हुई है (पृष्ठ 77)। सिकन्दर (1489-1517) अधिकत्तर आगरा में ही रहा और वहां उसने कुछ इमारतें बनाईं जिन्हें उसी के नाम से सिकन्दरा का नाम मिला। 1501 में उसके शासन काल के दौरान दिल्ली में शिहाबुद्दीन खां का मकबरा बना जिसे बागे आलम का गुम्बद भी कहते हैं और जिसमें चौकोर मकबरों के निर्माण के सामान्य मानदंड को अपनाया गया है (फलक 16 क, पृष्ठ 80)। परन्तु दिल्ली में उसका जो मकबरा है (फलक 16 ख, पृष्ठ 92)। वह अष्टभुजाकार मकबरे के विकास के अन्तिम चरण का उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह विशेष मकबरा उन्हीं लक्षणों को रखे हुए है जोकि मुहम्मद शाह के मकबरे में मौजूद हैं। यह ऊंची दीवारों से घिरे एक बड़े चौकोर बगीचे के भीतर स्थित है जिसके पश्चिम में एक कनाती मस्जिद और दक्षिण में एक सजावटी द्वार की व्यवस्था की गई है। यह मस्जिद और चौकोर बगीचे के घेरे की यह विशेषता बाद में मुगल मकबरों के अभिलक्षण बन गए।

लोदियों के शासन में दिल्ली में निर्मित दो मस्जिदें उल्लेखनीय हैं क्योंकि कुछ विशेषताएं जो मुगल काल में महत्वपूर्ण लक्षणों के रूप में विकसित हुईं उनका प्रारम्भ सबसे पहले यहीं पाया जाता है। 1484 में निर्मित लोदी गार्डन स्थित बड़ा-गुम्बद-मस्जिद के प्रार्थना कक्ष को पांच खंडों में बांटा गया है और यह तीन गुम्बदों से आच्छादित है जो टोड़ेदार लटकनों पर टिके हुए हैं और जिसके अन्तिम खंड नीची मेहराबी छतों से आच्छादित किए गए हैं (फलक 17, पृष्ठ 90), इसे शानदार तरीके से बेलबूटों तथा गचकारी के लेखों तथा रंगीन टाइलों से अलंकृत किया गया है। पिछली दीवार के छोरों और मध्य में छज्जेदार खिड़कियां हैं। बाहरी कोनों पर तथा मिहराब के पीछे ढालू पुश्ते लगाए गए हैं। गुम्बदनुमा मकबरे सहित 'एल' आकार की एक समतल भुजा बनाते हुए अब यह बड़ा-गुम्बद के नाम से प्रसिद्ध एक शानदार गुम्बद है जिसका अग्रभाग दो मंजिला दिखलाई देता है। इसकी इस स्थिति और इस तथ्य ने कि इस कक्ष में कोई कब्र नहीं है, कुछ विद्वानों को यह मानने के लिए गुमराह कर दिया है कि इस ढांचे को मस्जिद के एक द्वार के रूप में बनाया गया था।

सिकन्दर लोदी के एक मन्त्री, मियां भुवा द्वारा निर्मित मोठ-मस्जिद एक चबूतरे पर बनी है जिसके सामने कक्ष हैं। तीन गुम्बदों से आच्छादित उसके प्रार्थना कक्ष के सामने पांच शानदार मेहराबयुक्त द्वार हैं जिनमें मध्य द्वार सबसे ऊंचा है और इनमें से प्रत्येक के चाप-स्कंध टाइलदार गोलाकार फलकों से सज्जित हैं। बड़ा-गुम्बद-मस्जिद की तरह उसके भी ढालू पुश्ते हैं जो पिछले प्रक्षेपण के बगलों में हैं और उसमें दो मंजिली कोने की मीनारें तथा झरोखे हैं (फलक 19, पृष्ठ 77)।

(च) सूर और मुगल (1526-1707)

अपने शासन काल के अन्तिम समय में इब्राहीम लोदी (1517-26) विशेष रूप से शंकालु और झक्की बन गया था और इसलिए अपने उमरावों

और प्रांतीय सूबेदारों के साथ बुरा बर्ताव करने और उन्हें कैद करने से भी नहीं हिचकता था। इसके फलस्वरूप उसके खिलाफ हमेशा उनमें से कोई न कोई बगावत कर देता था। काबुल का बादशाह बाबर भारत पर दोबार हमला कर चुका था परन्तु अब लाहौर के सूबेदार दौलत खां लोदी ने, जो दिल्ली के सुल्तान से बहुत अधिक असंतुष्ट था, सुल्तान पर हमला करने के लिए बाबर को निमंत्रण भेजा। बाबर 1523 में भारत में दाखिल हुआ परन्तु बलख पर उजबेकों के दबाव के कारण उसे वापस लौटना पड़ा। वह 1526 में फिर लौटा और उसकी तथा इब्राहीम लोदी की सेना के बीच प्रसिद्ध पानीपत के युद्ध में मुठभेड़ हुई। इब्राहीम मारा गया और बाबर ने दिल्ली तथा आगरा पर कब्जा कर लिया। इस प्रकार भारत में एक बड़ा राज्य मुगलों के अधीन हो गया।

सैयदों और लोदियों के शासन में सभी प्रकार के सांस्कृतिक क्रियाकलाप, जिनमें कला और वास्तुकला भी शामिल थी, के क्षेत्र में अवरोध के चिह्न प्रकट होने लगे थे क्योंकि नये निर्माण कार्य केवल मकबरों तक सीमित रह गए थे। सूरों और मुगलों ने इस स्थिति को नये सिरे से दोबारा और वास्तुकला को एक बार फिर अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचाया जो कि काफी हद तक उनकी व्यक्तिगत अभिरुचि तथा संरक्षण के कारण ही नहीं बल्कि उनके काल में तुलनात्मक दृष्टि से शान्ति तथा सामान्य सुख-समृद्धि के बने रहने के कारण भी हुआ। परन्तु जब शासकों की वैयक्तिक अभिरुचि कम हो गई, जैसा कि बाद के मुगलों के समय में हुआ, सौन्दर्य परिबोध तथा वास्तुकला संबंधी उत्साह क्षीण हो गया। दिल्ली और आगरा जो अब एक के बाद दूसरी राजधानियों का स्थान प्राप्त करते रहे, उनके सौन्दर्य में मुगलों ने नई इमारतों का निर्माण कर अभिवृद्धि की जैसा कि अधोलिखित विवरण से स्पष्ट होगा।

(1) बाबर (1526-30)

बाबर एक सुसंस्कृत और असाधारण सौन्दर्य बोध वाला व्यक्ति था। उसे व्यवस्थित बगीचे लगवाने का शौक था और उसने कम से कम दो बगीचों का निर्माण एक आगरा में और दूसरा पानीपत में करवाया था। वह भारतीय कारीगरों से अधिक प्रभावित नहीं था परन्तु तब भी उसने अपने संस्मरणों में अपनी इमारतों के काम में लगे बहुत से संगतराशों और शिल्पियों का उल्लेख किया है जिससे यह सम्भव लगता है कि उसके द्वारा निर्मित कुछ संस्मारक बाकी नहीं बचे हैं। बहुत कम ऐसी इमारतें हैं जिनके बारे में यह विख्यात है कि या तो वे उसने बनवाई थीं या उसके सीधे संरक्षण में बनी थीं। ये हैं - पानीपत स्थित काबुली- बाग मस्जिद, संभल स्थित जामी मस्जिद, अयोध्या स्थित एक मस्जिद और आगरा में लोदी किले के भीतर एक मस्जिद जिनका उल्लेख उसकी आत्मकथा में है। उसके शासन काल की ईंटों से बनी एक छोटी मस्जिद भी है जिसके तीन मेहराबी द्वार हैं। यह दिल्ली के नजदीक पालम में है (पृष्ठ 69) और मेहरौली स्थित जमाली-कमाली नामक अत्यधिक शानदार और परिष्कृत मस्जिद का निर्माण भी उसी समय शुरु हुआ था परन्तु इसका निर्माण कार्य हुमायूं के शासन काल में पूरा हुआ (पृष्ठ 65)।

(2) सूरवंश (1540-55)

बाबर ने भारत पर कब्जा किया परन्तु वह अपने प्रदेश को सुदृढ़ नहीं कर पाया। सन् 1530 में उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र हुमायूं शेरशाह से मुसीबतें झेलने के लिए उसका उत्तराधिकारी बना। शेरशाह का दादा इब्राहीम खां जो एक अफगान सूर था बहलोल लोदी की राज्य सेवा में दाखिल हुआ था और उसने स्वयं बाबर के अधीन भी सेवा की थी। शेरशाह ने अब हुमायूं के विरुद्ध हथियार उठा लिए और सन् 1540 में उसे भारत

से बाहर निकाल दिया तथा उसे ईरान में शरण लेने पर मजबूर कर दिया। शेरशाह की मृत्यु सन् 1545 में हुई परन्तु सूर वंश सन् 1555 तक शासन करता रहा जिस समय हुमायूं लौटा और उसने उस समय के शासक सिकन्दर शाह सूर को उखाड़ फेंका और अपनी राजगद्‌दी पर फिर से कब्जा कर लिया।

शेरशाह न केवल असाधारण साहसी व्यक्ति और महान प्रशासक था बल्कि ज्ञान और आध्यात्मिक खोजों के प्रति भी समर्पित था। अनेक सड़कों का निर्माण कर उसने संचार व्यवस्था में सुधार किया, उनके साथ पेड़ लगवाए, मस्जिदें और कुएं तथा नियमित अंतराल पर सराएं बनवाईं और शाही डाक ले जाने के लिए विभिन्न स्थानों पर घोड़े तैनात किए। इनमें से सिन्धु से लेकर बंगाल में सोनार गांव तक, लाहौर दिल्ली और आगरा से गुजरने वाली और उसके द्वारा सिधाई के रूप में बनवाई जो वर्तमान ग्रैंड ट्रंक रोड के रूप में जानी जाती है, सुविख्यात सड़क है। उसने अनेक किले, मकबरे और मस्जिदें भी बनवायीं।

अपने प्रारंभिक जीवन काल के दौरान शेरशाह ने जो स्मारक बनवाए वे दिल्ली से बाहर स्थित हैं, जैसे-सासाराम और नारनौल में जहां उसका बचपन और किशोरावस्था का समय गुजरा था। सिंहासन पर बैठने के बाद उसने अपने इमारती क्रियाकलापों को दिल्ली में केन्द्रित किया जो कि सूर वास्तुकला के दूसरे चरण के रूप में वर्णित किया जा सकता है। ऐसा लगता है कि प्रारम्भ में उसने हुमायूं द्वारा निर्मित दीन-पनाह के शहर को धराशाई कर दिया। बाद में उसने एक पास के स्थल पर, जो सम्भवतः पहले पांडवों की राजधानी इन्द्रप्रस्थ का स्थल था (पृष्ठ 9), पुराने किले का दुर्ग बनवाया, जोकि दिल्ली का छठा नगर था और जिसके आसपास सिवाय पूर्व की ओर जहां यमुना बहती थी यह शहर फैला हुआ था। अनियमित दीर्घायत नक्शे के आधार पर बना यह दुर्ग अपने तीन द्वारों, ऊंची फसीलदार दीवारों और बुर्जों सहित पुराने ऊंचे उठे हुए टीले पर सुरम्य रूप में स्थित है। अपने किले के आसपास शेरशाह का नगर फैला हुआ था जिसके अपने घेरे के दो

सिरों पर शायद पुराने किले के पश्चिम में तथाकथित शेरशाह दरवाजे (पृष्ठ 126) तथा दिल्ली मथुरा सड़क पर कोटला फिरोजशाह के पश्चिम में काबूली या खूनी दरवाजे की व्यवस्था की गई थी (पृष्ठ 129)।

पुराने किले के अन्दर शेरशाह मस्जिद के नाम से सुविख्यात कला-ए-कुहना मस्जिद (फलक 18क, पृष्ठ 124) जो शाही इबादतखाने का काम करती थी निर्माण में मोठ-मस्जिद से एक कदम आगे है। एक ओर तो यह मस्जिद की डिजाइन का पूर्वाभास कराती है क्योंकि इसने यह आकार प्रारंभिक मुगल काल से ग्रहण किया था और दूसरी ओर यह शेरशाह की वास्तुकला के अलंकृत चरण पर भी बल देती है जोकि नारनौल और सासाराम में इसके द्वारा निर्मित मकबरों में दिखाई देने वाले अनलंकृत प्रतिमानों और पूर्व परम्परा से अलग था। इसका प्रार्थना कक्ष एक गुम्बद से आच्छादित था और इसके बगल में छतरियां थीं जो अब गायब हैं। इसके सामने नुकीली मेहराबों सहित पांच द्वार थे जो चार केन्द्रित ढांचों की ओर झुके हुए थे। मध्य मेहराब, जिसके किनारों पर कमल शीर्ष है उसका ढांचा पतली परत के उपस्तम्भों सहित लेखों की अलंकृत धारियों और ज्यामितीय डिजाइनों के अंतर्गत तैयार किया गया है। पश्चिमी दीवार के आले भी अत्यधिक अलंकृत हैं। एक मेहराब के भीतर दूसरी मेहराब को धंसाकर इन मेहराबों को भी अपूर्व ढंग से तैयार किया गया है। गवाक्षों, दूसरी मंजिल पर एक तंग वीथी और पिछले कोनों पर अर्ध अष्टभुजाकार तिमंजले बुर्जों का होना, इसकी अन्य कुछ दिलचस्प विशेषताएं हैं। इसके पड़ोस में स्थित शेर-मंडल (पृष्ठ 126) एक लाल पत्थर की दो मंजिला अष्ठभुजाकार मीनार है जिसे संगमरमर द्वारा उभारा गया है जिसे शायद प्रारंभ में एक मनोरंजन स्थल के रूप में बनाया गया था। यद्यपि यह विश्वास किया जाता है कि हुमायूं इसे अपने पुस्तकालय के रूप में इस्तेमाल करता था और इसी की सीढ़ियों से गिरकर उसकी मृत्यु हो गई थी। शेरशाह के उत्तराधिकारियों की वास्तुकला में कोई अभिरुचि नहीं थी। यह विश्वास किया जाता है कि लाल किले से सटे हुए सलीमगढ़ के किले (पृष्ठ 145) का निर्माण शेरशाह के

पुत्र इस्लाम शाह (1545-54) ने करवाया था, जो सलीम शाह के नाम से जाना जाता था। सन् 1547 में उसके शासन काल में शेरशाह के दरबार के एक उमरोव ईसाखां, जिसने शेरशाह की मृत्यु के बाद इस्लाम शाह की भी सेवा की थी, का अष्टभुजाकार मकबरा (फलक सं. 11 पृष्ठ 110) बनवाया गया था जिसका स्थान बाद में निर्मित हुमायूं के मकबरे के समीप के स्थल पर निर्धारित किया गया था।

(3) हुमायूं (1530-40 तथा 1555-56)

हुमायूं सन् 1530 में राजसिंहासन पर बैठा और जैसा कि पहले बताया गया है शेरशाह सूर ने सन् 1540 में उसे देश से बाहर खदेड़ दिया था (पृष्ठ 34)। अपने दस साल के शासन काल में शेरशाह सूर के दबाव को बर्दाश्त करने के अतिरिक्त वह प्रांतीय गवर्नरों से लगातार युद्ध में उलझा रहा। ऐसी परिस्थितियों में, उसके पास बौद्धिक और सांस्कृतिक कार्यों, जिनमें वास्तुकला भी शामिल है, के लिए न तो कोई फुर्सत थी और न ही उत्साह था। सिकन्दरशाह सूर को हराकर वह जुलाई 1555 में फिर राजगद्दी पर बैठा परन्तु जनवरी 1556 में मर गया, जिससे उसे अपने विशाल साम्राज्य को भी सुदृढ़ करने का समय नहीं मिला, अन्य क्रियाकलापों पर तो और भी ध्यान नहीं दे पाया। नशीले पदार्थों की आदत ने भी अवश्य ही उसमें ऐसे कलात्मक क्रियाकलापों के लिए प्रेरक उमंग और अध्यवसाय को नष्ट कर दिया था।

तब भी उसका शासन काल पूर्णतः क्रियाकलाप रहित नहीं था। सन् 1533 में उसने दिल्ली में यमुना के किनारे एक नये शहर दीन-पनाह की आधार शिला रखी और उसे अलाउद्दीन के सीरी दुर्ग से चुराई गई भवन सामग्री से उसकी दीवारों, बुर्जों और द्वारों सहित दस महीनों की अल्पावधि में पूरा कर दिया गया। हुमायूं ने दीनपनाह का स्थल चुनने में पर्याप्त कष्ट उठाया और अपने उमरावों और बुजुर्गों के समक्ष विद्वानों और ज्योतिषियों

द्वारा बताये गए निर्धारित मांगलिक अवसर पर उसकी आधार शिला रखी। परन्तु अब इसका कोई नामोनिशान बाकी नहीं है क्योंकि शेरशाह सूर ने इसे व्यवस्थित रुप से गिरवा दिया था।

यह कहा जाता है कि अपना राजसिंहासन पुनः प्राप्त करने के बाद हुमायूं ने शेरशाह सूर द्वारा पूरे किए गए पुराने किले के भागों को पूरा करवाया। परन्तु उसके शासन काल में मेहरौली की जमाली-कमाली मस्जिद (पृष्ठ 65) को पूरा किया गया जो उसके पिता के शासन काल में लगभग 1528-29 में शुरु की गई थी। जमाली एक कवि शेख फजलुल्लाह का तखल्लुस था जिसके मकबरे को चमकदार टाइलों और पलस्तर के कटावों से शानदार ढंग से सजाया गया था। यह मकबरा मस्जिद से सटा हुआ है। एक अकेले ऊंचे गुम्बद से आच्छादित, पश्चिमी दीवार पर अपने पांच गहरे आले, पिछवाड़े में खिड़कियां और पिछले कोनों में अष्ठभुजाकार बुर्जों सहित है। एक सीढ़ी दूसरी मंजिल पर एक तंग वीथी तक जाती है। इसका मुगलों की मस्जिद निर्माण के विकास में एक महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इसमें मोठ मस्जिद (पृष्ठ 32, 77) तथा बड़ा गुम्बद मस्जिद (पृष्ठ 32, 90) जिसे पहले बनाया गया था और शेरशाह की मस्जिद (पृष्ठ 36, 123) जिसे बाद में बनाया गया था, इन दोनों की विशेषताएं मौजूद हैं।

जैसाकि पहले उल्लेख किया गया है (पृष्ठ 136) यह माना जाता है कि पुराने किले में स्थित शेर-मंडल का इस्तेमाल हुमायूं अपने पुस्तकालय के रुप में किया करता था। जैसे ही वह उतर रहा था उसने मुअज्जिन की गुहार सुनी और वह तत्काल सीढ़ियों पर बैठ गया। जब वह उठा तो उसका पैर फिसल गया और वह नीचे गिर गया। अन्ततः चोटों के कारण सन् 1556 में उसका देहान्त हो गया, उसकी बड़ी बेवा बेगा बेगम ने जो हाजी बेगम के नाम से विख्यात है (फलक 1, पृष्ठ 105) उसकी मृत्यु के नौ साल बाद सन् 1565 में उसका मकबरा बनाना शुरू किया यह सही मुगल शैली का प्रथम स्पष्ट उदाहरण है जो फारसी वास्तुकला से प्रेरित है। इस बात में

संदेह करने की कोई आवश्यक्ता नहीं है कि हुमायूं ने अपने निर्वासन काल में फारसी वास्तुकला के विचारों को ग्रहण कर लिया था। ऐसी संभावना है कि उसने स्वयं मकबरे की योजना बनाई होगी, यद्यपि इस संबंध में कोई विवरण नहीं मिलता। लाल बलुआ पत्थर से निर्मित यह दुमंजिला चौकोर मकबरा जिसके प्रत्येक पार्श्व में तीन मेहराब युक्त विशाल गवाक्ष हैं, एक बगीचे के बीच में एक चबूतरे पर बना हुआ है। यह चहार-बाग नालियों द्वारा चार मुख्य फूलों के बगीचों में बांटा गया है। अष्टभुजाकार मध्य कक्ष में स्मारक कब्र है जबकि कोनों के कक्षों में शाही परिवार के अन्य सदस्यों की कब्रें हैं। छत के ऊपर विशाल दुहरे गुम्बद के चारों ओर स्तंभयुक्त छतरियां हैं, दुहरा गुम्बद भारत में पहली बार यहां दिखलाई पड़ता है।

यह मकबरा फारसी वास्तुकला और भारतीय परम्पराओं का एक मेल है जिनमें से पहले का मेहराबयुक्त विशाल गवाक्ष, गलियारों और ऊंचे दुहरे गुम्बद तथा दूसरे का छतरियों द्वारा अनुकरण किया गया है और इस प्रकार इसे एक पिरामिडीय रेखाचित्र और ऐसी विशेषताओं जैसे दालानों में शहतीर और सरदलों का इस्तेमाल करके विशेष रूप दिया गया। यद्यपि सिकन्दर लोदी का मकबरा भारत में निर्मित किया जाने वाला पहला बाग युक्त मकबरा था परन्तु यह हुमायूं का मकबरा ही था जिसने एक नया प्रचलन शुरू किया जिसकी विशिष्ट उपलब्धि आगरा स्थित ताजमहल है। इन दोनों इमारतों के निर्माण के पीछे कुछ-कुछ समान मानवीय-प्रेरणा है, इनमें से एक का निर्माण अपने पति के लिए एक समर्पित पत्नी द्वारा कराया गया था और दूसरे का निर्माण अपनी पत्नी के लिए एक समान रूप से या अधिक समर्पित पति द्वारा कराया गया था।

(4) अकबर (1556-1605)

हुमायूं की मृत्यु के समय उसका बड़ा बेटा अकबर केवल तेरह साल का ही था और उसके प्रारंभिक शासन काल के दौरान उसके शिक्षक बैरम खां ने

एक प्रतिशासक के रूप में कार्य किया । अकबर ने मौखिक शिक्षण का विरोध किया और लगभग अनपढ़ ही बना रहा परन्तु उसने सार्वभौमिक सहिष्णुता और उदार दृष्टिकोण की भावना को अपना लिया। बाद में अपने जीवन में उसने इस्लाम धर्म के विभिन्न संप्रदायों के बीच होने वाले धर्मविषयक वाद-विवादों में हिस्सा लिया और विभिन्न धर्मों की शिक्षाओं को भी सुना। वास्तव में उसने अपने खुद के मत "दीने-इलाही" (दैविक मत) की उद्‌घोषणा करने की कोशिश की। उसके हिन्दुओं के साथ संबंध बड़े सौहार्दपूर्ण थे और उसने आमेर की हिन्दू राजकुमारी तथा अन्य राजपूत राजकुमारियों से भी विवाह किया तथा घर में उन्हें अपने हिन्दू जीवन को अपनाये रखने की अनुमति प्रदान की। उसके विश्वसनीय हिन्दू दरबारियों में आमेर के राजा मानसिंह और राजा टोडरमल थे। वह कला और वास्तुकला में तीव्र दिलचस्पी रखता था। हिन्दू तथा फारसी तकनीकों के संयोजन के फलस्वरूप उसके मार्गदर्शन में मुगलशैली की चित्रकला का विकास हुआ। उसकी वास्तुकला की यह विलक्षणता है कि यह निर्माण और अलंकरण के स्वदेशी और इस्लामी तौर-तरीकों का एक सुखदायी समान तौर पर मिश्रण है। हुमायूं के मकबरे को छोड़कर (पृष्ठ 38, 105) जिसे उसने स्वयं खुद नहीं बनवाया था किसी भी मुगल शैली ने अभी तक कोई रूप ग्रहण नहीं किया था, फिर भी अकबर ने सर्वप्रथम उसे अपनी खुद की विशेषता प्रदान की ।

अकबर की राजधानी दिल्ली नहीं बल्कि आगरा थी। जहां उसने अपना प्रसिद्ध किला और कुछ ही दूर फतेहपुर सीकरी नामक नया नगर निर्मित करवाया था। उसका मकबरा सिकन्दरा में आगरे के बाह्यअंचल में स्थित है। उसके शासन काल के प्रारम्भ के वर्षों में कुछ इमारतें दिल्ली में भी बनाई गयीं और इनमें से कुछ में शायद वह निजी तौर पर भी अभिरुचि रखता था। अकबर की एक धाय माहम अंगा के पुत्र और उसके सेनापतियों में से एक अधम खां ने एक मन्त्री और दूसरी धाय जीजी अंगा के पति अतगा खां को मार डाला। इससे अकबर आग बबूला हो गया और उसने

अधम खां को एक छत से नीचे गिरवा दिया। मेहरौली में इसका मकबरा है जो सन् 1562 में बनवाया गया था जो अष्टभुजाकार है और यह लोदी शैली में है। फर्क यह है कि इसमें सामान्य छज्जा नहीं है (पृष्ठ 60)। स्वयं माहम अंगा ने पुराने किले के सामने 1561-62 में खैरूल मनाज़िल मस्जिद (पृष्ठ 125) बनवाई थी। सन् 1566-67 में निजामुद्दीन में निर्मित अतगा खां का मकबरा एक चहारदीवारी के घेरे में स्थित एक चौकोर कक्ष है। लाल बलुआ पत्थर से निर्मित यह मकबरा जिसकी बाजुओं में तीन गहरे मेहराब हैं, एक छोटे पैमाने पर हुमायूं के मकबरे जैसा सम्मुख दर्शन में दिखलाई देता है किन्तु यह अधिक ही अलंकृत किया गया है।

(5) जहांगीर (1605-1627)

1605 में अकबर की मृत्यु के बाद आमेर की राजकुमारी से उत्पन्न उसका बेटा सलीम जहांगीर के नाम से राजगद्दी पर बैठा। स्वभाव से वह आमोद-प्रमोद प्रिय था और प्राकृतिक सौन्दर्य का पुजारी था। फारसी साहित्य का अच्छा जानकार होने के कारण वह कभी-कभी उसमें कविताओं की रचना भी कर लिया करता था। लघुचित्रों के निर्माण ने उसे बहुत अधिक आकर्षित किया और वास्तव में उसके सीधे संरक्षण में ही मुगल चित्रकला का अभूतपूर्व विकास हुआ। परन्तु वास्तुकला में उसकी बहुत कम रुचि थी।

उसने अपने जीवन का अधिक समय लाहौर और काबुल में गुजारा और इसी कारण उसकी दिलचस्पी सड़कें बनाकर उनके साथ-साथ कोस मीनारें, पुल और सरायों का निर्माण करके संचार व्यवस्था के विकास करने में रही। आगरा में उसके पिता और श्वसुर दोनों के प्रमुख स्मारक हैं। जिनके निर्माण में उसने दिलचस्पी ली। उसके शासन काल के बाद के समय में दिल्ली में कुछ स्मारक बने परन्तु उनके निर्माण में उसका कोई हाथ नहीं था। उसने चौसठ स्तंभों सहित (पृष्ठ 117) निजामुद्दीन स्थित चौसठ-खंभा का 1623-24 में जीजी अंगा और अतगा खां के पुत्र मिर्जा

अजीज कोकल्ताश की मृत्यु के बाद उसके मकबरे के रूप में इस्तेमाल किया गया। बैरम खां के पुत्र मिर्जा अब्दुर्रहीम खान-ए-खाना, जिन्होंने अकबर और जहांगीर दोनों की ही सेवा की थी और जो अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे तथा जिन्होंने रहीम के प्रसिद्ध नाम से हिन्दी मे दोहों की रचना की थी, निजामुद्दीन के समीप (फलक 20ख पृष्ठ 119) के एक अतिविशाल मकबरे में दफन हैं। मूलतः इसके बाहरी भाग में लाल बलुआ पत्थर लगा था जिसे धूसर बलुआ पत्थर और संगमरमर से उभारा गया था जिसमें से बहुत कुछ को सफदरगंज के मकबरे में इस्तेमाल के लिए उखाड़ा गया (फलक 3, पृष्ठ 87), इसका मूल आकार हुमायूं के मकबरे जैसा है।

(6) शाहजहां (1628-58)

जहांगीर की मृत्यु 1627 ईसवी में हुई परन्तु शाहजहां अपने बड़े भाई खुसरो के बेटे दावर बख्श द्वारा कुछ समय तक शासन करने के बाद ही सन् 1628 में अन्य प्रतिद्वन्द्वियों के रास्ते से हटाये जाने के बाद राजसिंहासन पर बैठा। शाहजहां को अपने पिता से कलात्मक अभिरुचि विरासत में मिली परन्तु उसकी यह अभिरुचि और उत्साह उससे भी आगे बढ़ गया। यह वास्तुकला ही थी जिसने उसको कसकर बांधे रखा और संतुष्ट किया और आजीवन उसका शौक बना रहा।

जिस समय वह राजगद्दी पर बैठा मुगल साम्राज्य को प्रारम्भ हुए लगभग एक शताब्दी से अधिक हो चुका था और इस दौरान उसकी कलात्मक परम्पराएं परिपक्व और परिष्कृत हो चुकी थीं। इनमें उसकी वैयक्तिक अभिरुचि और संरक्षण जुड़ गए और नतीजा यह हुआ कि वास्तुकला का उल्लेखनीय रूप से प्रस्फुटन हुआ।

शाहजहां ने अन्य पत्थरों की तुलना में संगमरमर को अधिक पसन्द किया। उसकी इमारतों की विलक्षणता यह थी कि उनमे एक प्रकार के रूप विधान और नारीत्व, कामुकता तथा संवेदनशीलता का भाव है, जोकि

अकबर के मजबूत, सख्त और अपेक्षाकृत सीधे-सादे दिखाई देने वाले निर्माणों से अलग है। अत: स्वाभाविक है कि अलंकरणों ने इमारतों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लाल बलुआ पत्थर पर उभरे हुए और सीधे-सादे काम का स्थान अब संगमरमर पर नाजुक नक्काशी जो लगभग जरदोजी के काम जैसा था और सुन्दर जड़ाऊ काम तथा चित्रकारी ने ले लिया। मेहराबें बेलबूटेदार हो गयीं और गुम्बद को फारसी रूप मिल गया जिसकी रूपरेखा गोलाकार और गर्दन पर संकुचन लिए हुए थी। स्तंभों को बेलबूटेदार आधारों पर टिकाते हुए यष्टि सहित ऊपर उठाया गया और अन्तर्वलयित टोड़े लगाकर उनके सिरों को सजाया गया।

शाहजहां ने लाहौर और आगरा के किलों की परिवर्धित योजना बनाई और इनके भीतर अनेक इमारतों का निर्माण किया। यहां तक कि आगरा में उसने बलुआ पत्थरों से बनी कुछ इमारतों को नष्ट कर दिया और उनके स्थान पर संगमरमर की इमारतें बनायीं। परन्तु उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि आगरे का ताजमहल है।

सन् 1638 में शाहजहां आगरा से राजधानी हटाकर दिल्ली ले आया और दिल्ली के सातवें नगर शाहजहाँनाबाद की आधार शिला रखी (पृष्ठ 140) जोकि अनगढ़े पत्थरों की एक मोटी दीवार से घिरा है जिसमें अनेक बुर्ज, फाटक और अन्तरालों पर छोटे-छोटे दरवाजे हैं। इसके चौदह फाटकों में से कुछ फाटकों को पहले ही गिराया जा चुका है। उसका प्रसिद्ध दुर्ग लाल किला जो यमुना नदी के दाहिने किनारे पर शहर के पूर्वी छोर पर स्थित है (पृष्ठ 146) सन् 1639 में बनना शुरु हुआ और नौ साल बाद पूरा हुआ। यह आगरे के किले से भिन्न है क्योंकि इसके पीछे शाहजहां द्वारा प्राप्त अनुभव मौजूद है और इसका कारण यह है कि इसकी योजना एक अकेले व्यक्ति की बनाई हुई थी। यह एक अनियमित अष्टभुजाकार किला है जिसकी दो लम्बी भुजाएं पूर्व और पश्चिम में हैं और जिसमें दो फाटक हैं एक पश्चिम की ओर और दूसरा दक्षिण की ओर, जिन्हें क्रमश: लाहौरी गेट (फलक 22) और दिल्ली गेट के नाम से जाना जाता है।

मुस्लिम देशों में समकालीन दरबारों के जीवन और रस्म-रिवाजों को प्रतिबिम्बित करते हुए शाही महलों को नदी के सामने पूर्व के साथ-साथ बनवाया गया है जबकि अन्दर की ओर मूलतः बादशाह के उमरावों, रिश्तेदारों और परिजनों के कक्ष बनाए गए हैं। किले की दीवारें, फाटक और कुछ अन्य इमारतें लाल बलुआ पत्थरों से बनाई गई हैं जब कि संगमरमर का इस्तेमाल शाही महलों के लिए किया गया है।

किले के भीतर महल क्षेत्र में प्रवेश बहुमंजिले नौबत या नक्कार खाने के जरिए होता है जहां समारोह संबंधी संगीत बजता था और यह दीवाने - आम के सामने राज दरबार के प्रवेश द्वार का काम भी करता था। दीवाने - आम के भीतर एक लाल बलुआ पत्थर का समकोणीय कक्ष है (फलक 23: पृष्ठ 148) जिसमें एक संगमरमर के चंदोवे के नीचे शाही तख्त रहता था और जिसके नीचे वजीरेआजम के लिए संगमरमर का जड़ाऊ काम वाला मंच बना हुआ है। सिंहासन के पीछे की दीवार को 'पीत्र दुरा' के जड़ाऊ कामके सुन्दर फलकों से अलंकृत किया गया था जिसके बारे में कहा जाता है कि इन्हें फ्लोरेंस के एक कलाकार आस्तां दि बोर्दो ने तैयार किया था।

मूलरूप में पूर्व की ओर नदी की तरफ छः संगमरमर के महल थे और दीवाने-आम के पीछे परन्तु बीच के भाग द्वारा अलग किया गया रंग महल भीतरी भाग में है जिसके रंगीन सजावट के कारण इसे यह नाम दिया गया। इसके दोनों ओर मेहराबदार कक्षों सहित एक मुख्य कक्ष था और इसके बीच से एक नहर जो नहरे-बहिश्त कहलाती थी, गुजरती थी और उसके बीच में एक संगमरमर का हौज बनाया गया था जिसमें एक हाथी दांत का बना फव्वारा लगा हुआ था। मुमताज महल जो प्रारंभ में शाही हरम का एक अंग था उसमें अब दिल्ली के किले का पुरातत्व संग्रहालय है।

दीवाने खास बहुत ही अलंकृत स्तंभों वाला कक्ष है (फलक 2 पृष्ठ 151)। इसमें एक संगमरमर का मंच है जिसके बारे में कहा जाता है कि इस पर प्रसिद्ध मयूर सिंहासन रखा हुआ था जिसे फारस का प्रसिद्ध आक्रमणकर्ता नादिर शाह अपने साथ उठाकर ले गया। तस्बीह-खाने में तीन

कमरे है, जिसके पीछे ख्वाबगाह (शयन कक्ष) है। उसके उत्तर की ओर दीवार पर एक इन्साफ का तराजू बना हुआ है जोकि सितारों और बादलों के बीच एक अदृर्धचंद्र पर लटका हुआ है (फलक 24)। बादशाह अपनी रियाया (प्रजाजनों) के समक्ष हर सुबह अष्टभुजाकार मुसम्मनबुर्ज पर खड़ा होता था जो ख्वाबगाह के पूर्वी दीवार से लगा हुआ है। अक्बर शाह द्वितीय ने सन् 1808 में इस बुर्ज से बाहर निकला हुआ एक छोटा छज्जा बनवाया था और इसी छज्जे से दिसम्बर 1911 में जार्ज पंचम और रानी मेरी ने दिल्ली के लोगों को दर्शन दिए थे।

हमाम (स्नानागार) में तीन मुख्य कमरे थे, उसमे फर्शों पर जड़ाऊ रंगीन पत्थर जड़े गए थे। हमाम में गरम और ठंडे पानी की व्यवस्था थी और यह कहा जाता है कि सबसे पूर्व के कमरे के फव्वारों मे से एक से गुलाब जल की बौछार निकला करती थी। इस हमाम के उत्तर में स्थित छोटे महलों सहित हयात बख्शबाग (स्वस्थता प्रदान करने वाला बाग) था जिसे बाद में काफि रद्दो बदल कर दिया गया।

सन् 1644 में शाहजहां ने अपनी विशाल जामे-मस्जिद का निर्माण शुरु किया जो भारत में सबसे बड़ी मस्जिद है और इसे सन् 1650 में पूरा किया। एक उठी हुई कुरसी पर निर्मित इस मस्जिद के तीन शानदार दरवाजे हैं जिन तक लम्बी सीढ़ियां चढ़ करके पहुंचा जा सकता है तथा इसके इबादतखाने की बगल में दोनों छोरों पर चार मंजिली मीनारें हैं और इबादतखाना काले और सफेद संगमरमर की समानान्तर धारियो से अलंकृत तीन बड़े-बड़े गुम्बदों से ढका हुआ है।

दिल्ली में शाहजहां के शासन काल की अन्य इमारतों में से शाही परिवार के साथ उनके साथ महत्वपूर्ण संबंध को देखते हुए उसकी बेटियों जहांआरा और रोशनआरा के मकबरों का उल्लेख किया जा सकता है। अपने पिता द्वारा शाहजहांनाबाद के निर्माण के पूरा करवाये जाने के तत्काल बाद रोशनआरा ने सन् 1650 में अपने बगीचे वाले मकबरे की आधार शिला रखी। निजामुद्दीन स्थित जहांआरा के मकबरे को उसने स्वयं सन् 1681 में

बनवाया था और यह एक बिना छत का छोटा अहाता है जिसकी दीवारें जालीदार संगमरमर के परदों की बनी है तथा उसकी कब्र पर एक कारुणिक लेख है (पृष्ठ 115)। शाहजहां की बेगमों में से एक बेगम फतेहपुरी बेगम ने उसी नमूने के आधार पर, जो परम्परागत बन चुका था, सन् 1650 में चांदनी चौक के पश्चिमी छोर पर प्रसिद्ध फतेहपुरी मस्जिद बनवाई थी (पृष्ठ 142)।

(7) औरंगजेब (1658-1707)

औरंगजेब ने अपने पिता को कैद में डाल दिया और जुलाई, 1658 में दिल्ली में स्वयं बादशाह के रुप में शालीमार बगीचे में राजगद्दी पर बैठा। इस बगीचे में केवल अब कुछ परित्यक्त इमारतें है जिनमें वनस्पतीय चित्रकारी के कुछ धब्बे बाकी हैं (पृष्ठ 136)। अपने तीन भाइयों पर विजय प्राप्त करके या अन्यथा उनका काम तमाम करके उसने दिल्ली में (जून 1659 में) अपना दूसरा राज्याभिषेक मनाया। मुगल साम्राज्य अब अपनी अतिनैतिक मान्यताओं, धर्मान्ध व्यवहार और अन्य बाह्य कारणों से बिखरना शुरू हो गया था। उसके सिंहासनारूढ़ होने से सांस्कृतिक और बौद्धिक कार्यों को और भी नुकसान पहुँचा और वास्तुकला तथा ललितकलाओं का ह्रास हुआ और वे उपेक्षित हो गईं जिससे वे मुगलों के शासन काल में कभी भी उभर नहीं पाईं। काफी हद तक निस्संदेह यह बादशाह की स्वयं की कलाओं के प्रति अरुचि के कारण भी था। शाहजहां और औरंगजेब की मनोवृत्तियां विरोधात्मक होने से अध्ययन का विषय हैं। शाहजहां अपनी रियाया के जीवन कार्यों में हिस्सा लेता था, उनके तीज- त्योहारों और प्रार्थना में शामिल होता था, अपनी बनाई जामे-मस्जिद का प्रयोग वह स्वयं और उसकी प्रजा भी करती थी। परन्तु औरंगजेब एक अलगाववादी जीवन बिताता था और अपने सम्पूर्ण जीवन को अपनी हद तक रखे हुए था। दिल्ली के लाल किले में सन् 1659-60 में उसने अपने निजी इस्तेमाल के

लिए मोती मस्जिद बनवायी थी। यह माना जाता है कि आगरा में उसी उद्देश्य से उसने नगीना मस्जिद भी बनवाई हालांकि कुछ विद्वान इसे शाहजहां द्वारा बनवाई गई मानते है। मोती मस्जिद, जो पूर्णतः संगमरमर की बनी है, उसमें परम्परागत नमूने को अपनाया गया है। उसकी सफेद सतह के किनारों तथा अन्य डिजाइनों को काले संगमरमर से उभारा गया है। यह एक सुरुचि सम्पन्न श्रेष्ठ कलाकृति है। यद्यपि इसके तीन गुम्बद, जिन पर प्रारंभ में तांबे के पत्तर चढ़े थे, शायद कुछ अधिक गोलाकार है और ये उसके गरिमामय दर्शन में बाधा उत्पन्न करते है। औरंगजेब ने दिल्ली और आगरा के किलों में कुछ वृद्धि भी की जैसे कि उसने पहले किले के मामले में प्रवेश द्वारों के सामने घेरेबन्दी करवाई।

औरंगजेब की पुत्री जीनतुन्निसा बेगम ने दरियागंज स्थित सुन्दर जीनतुल मस्जिद या घाट मस्जिद अपने पिता की मृत्यु के बाद लगभग सन् 1711 में बनवाई थी। अपने दादा द्वारा निर्मित जामे मस्जिद की तुलना में बहुत छोटी यह मस्जिद काले संगमरमर की धारियों वाले सफेद संगमरमर के गुम्बदों, लाल बलुआ पत्थरों के सामने के निर्माण तथा ऊंची मीनारों से सरसरी तौर पर उससे मिलती जुलती सी लगती है।

(क) उत्तर कालीन मुगल बादशाह (1707-1857)

औरंगजेब की मृत्यु 1707 में हुई और इसके बाद मुगल साम्राज्य तेजी से विघटित हो गया यद्यपि मुगलों के उत्तराधिकारी सन् 1857 तक इस विघटित राज्य पर शासन करते रहे। यह काल परस्पर फूट, शनैःशनैः विदेशी शक्तियों की घुसपैठ तथा फारसी आक्रामक नादिरशाह द्वारा और अफगानिस्तान में उसके उत्तराधिकारी अहमद शाह दुर्रानी द्वारा आक्रमणों के लिए उल्लेखनीय है। मुगल शासकों के पास न तो विशेष निर्माण करने के लिए कोई संसाधन ही थे और न ही उनका इस ओर झुकाव था। इसका केवल महत्वपूर्ण अपवाद है मिर्जा मुकीम अबुल मन्सूर खां का मकबरा, जो

सफदरजंग की उपाधि से भी विभूषित था और जो मुहम्मद शाह (1719-48) के अधीन अवध का सुबेदार था और बाद में अहमद शाह (1748-54) के अधीन वजीरे आजम बन गया था। यह मकबरा सफदरजंग के बेटे शुजाउद्दौला द्वारा लगभग 1754 में बनाया गया था। यह न केवल उस नमूने की अन्तिम मिसाल है जो हुमायूं के मकबरे से शुरु हुई थी बल्कि यह उसकी अनिवार्य विशेषताओं का भी अनुकरण करती है। एक बड़े बगीचे के भीतर घेरे में बना चार-बाग के नमूने के आधार पर चौकोरों में विभाजित मध्यवर्ती मार्गों के साथ-साथ तालाबों और फव्वारों सहित यह दुमंजिला मकबरा इस अहाते के मध्य में स्थित है। इसके अतिशय अलंकरण और समानुपातो की कमी जो सीधी ऊंचाई द्वारा विशेष रुप से प्रकट होती है, उसे महान इमारत के लक्षण से वंचित करती है यद्यपि इसे सही तौर पर दिल्ली में मुगल वास्तुकला के चिराग की बुझती लौ के रुप में वर्णित किया गया है।

एक बिल्कुल अलग किस्म की इमारत, जिसे उत्तर-कालीन मुगलों के शासन काल में लगभग सन् 1724 में बनाया गया था वह जन्तर-मन्तर (फलक 4, पृष्ठ 95) है जिसे जयपुर के महाराज जयसिंह द्वितीय (1699-1743) ने बनवाया था और यह खगोलीय पिण्डों की हरकतों को समझने के लिए चिनाई किए गए यन्त्रों की एक खगोलीय वेधशाला है।

(ज) आधुनिक काल

सन् 1857 में दिल्ली का फिर नाम हुआ। उस वर्ष की 11 मई से 17 सितम्बर तक दिल्ली देश की स्वतंत्रता के लिए पहली बार संगठित योद्धाओं के हाथ में रही। जब अंग्रेजों की सत्ता फिर से स्थापित हुई तब बहादुर शाह द्वितीय को रंगून निर्वासित कर दिया गया और इस प्रकार दिल्ली में मुगल शासन का अन्तिम नामों-निशान मिट गया। इस उतार-चढ़ाव से जुड़ी दिल्ली में अनेक इमारतें हैं। इनमे है-दिल्ली के बड़े डाक घर के समीप मैगजीन गेट (पृष्ठ 144), फ्लैग स्टाफ टावर (पृष्ठ 132) तथा म्यूटिनी

मेमोरियल (विद्रोह स्मारक) (पृष्ठ 135)। फ्लैग स्टाफ टॉवर उस स्थान का द्योतक है जहां अंग्रेज छावनी की औरतें करनाल भागने से पहले 11 मई 1857 को अपने बच्चों और नौकरों के साथ इकट्ठी हुई थीं। म्यूटिनी मेमारियल जिसे अब अजीतगढ़ का नाम दिया गया है मूल रूप से सन् 1863 में उन अधिकारियों और सैनिकों की स्मृति में बनवाया गया था जिन्होंने तथाकथित इस बगावत को कुचलने में अपनी जान दे दी थी।

प्रारम्भिक अंग्रेज प्रशासकों से सम्बन्धित कुछ अन्य इमारतें भी हैं। इनमें से एक मेटकाफ हाउस (पृष्ठ 139) है जिसे बहादुर शाह द्वितीय के दरबार के सर थॉमस मेटकाफ ने लगभग सन् 1835 में बनवाया था। इसके उत्तर में कुछ किलोमीटर पर राज्याभिषेक स्मारक है जहां सन् 1911 में दरबार हुआ था जिसमें अंग्रेजी भारत की राजधानी को कलकत्ता से बदलकर दिल्ली लाने के निर्णय की घोषणा की गयी थी। इस महत्त्वपूर्ण निर्णय के कारण नई दिल्ली का निर्माण हुआ जहां हजारों इमारतें बनाई गयीं और अब भी बनाई जा रहीं हैं। उनमें से बहुतों की संस्मारकीय विशेषताएं हैं। परन्तु वे इस पुस्तक की परिधि में नहीं आतीं।

(4) कुतुब क्षेत्र

(क) लालकोट

यह विश्वास किया जाता है कि तोमर राजपूत पहले सूरजकुंड के क्षेत्र (पृष्ठ 98) में बसे थे और बाद में वे 10 किलोमीटर पश्चिम की ओर हट गए, जहां अनंगपाल ने लाल कोट के नगर-दुर्ग का निर्माण कराया था जो अब अपनी पत्थरों से निर्मित मोटी प्राचीरों के साथ बचा है, जिसका विशालदर्शी नजारा कुतबमीनार के ऊपर या छज्जों से देखा जा सकता है। हाल में हुई खुदाइयों से पता चला है कि लालकोट का प्रारंभिक किला योजना के अनुसार आयताकार था और पश्चिम की ओर की इसकी ऊंची

पत्थर की दीवारें जो मूल अहाते को बड़ा बनाती है और वे इसका एक हिस्सा समझी जाती है जोकि बाद के निर्माण है। प्राचीरों के बाहर एक खाई थी जो अब केवल कुछ जगहों में दिखाई पड़ती है। ऊपर उल्लिखित बाद की दीवारों पर विशाल बुर्ज थे और जिसमें अनेक द्वार थे, इनमें से कुछ बाहरी निर्माण कार्य थे जो गजनी, सोहन और रणजीत द्वारों के नाम से विख्यात हैं।

इन प्राचीरों की अनगढ़े पत्थरों से बनी दीवारें 2.5 से 3 मीटर मोटी हैं जिनके बाहर की ओर पत्थर लगे जिन पर एक मोटी ईंट की परत चढ़ाई गई है। बाद में ईंट के फलक के सामने स्थानीय क्वार्टजाइट खंडों से सुसज्जित एक सुरुचिपूर्ण और भव्य परत निर्मित की गई थी जो अब केवल कुछ दूरी तक ही विद्यमान है तथा अनियमित अन्तरालों पर अर्द्धगोलाकार दिखाई देते साफ सुथरे बुर्ज भी बनाए गए थे।

अनेक इमारतों के अवशेष लालकोट के भीतर खोजे जा सकते हैं परन्तु किसी भी महल का पता नहीं लग पाया है। उसका मूल मंदिर क्षेत्र अब कुतुब मीनार तथा अन्य सम्बद्ध स्मारकों के क्षेत्र में है।

लालकोट की दीवारों को काटती हुई दिल्ली-कुतुब, बदरपुर-कुतुब और मेहरौली-कुतुब सड़कों का निर्माण हुआ है और दर्शक को केवल उनकी झलक इन दिशाओं में किसी भी एक दिशा से इस क्षेत्र में पहुंचने पर मिल सकती है यद्यपि मेहरौली की ओर से आने पर ये इतनी स्पष्ट रूप से नहीं दिखाई देतीं।

(ख) किला राय पिथौरा

शाकंभरी के चौहान राजा विग्रहराज चतुर्थ ने बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में तोमरों से दिल्ली छीन ली (पृष्ठ 13) और उसके पौत्र पृथ्वीराज तृतीय ने, जो राय पिथौरा के नाम से लोकप्रिय था, लालकोट का विस्तार उसके आसपास विशाल प्राचीरें बनाकर किया था। यह विस्तारित

नगर, जिसका दक्षिण-पश्चिमी आधार लालकोट है, किला राय पिथौरा के रूप में जाना जाता है और यही दिल्ली के तथा-कथित सातनगरों में से पहला है। कुतबुद्दीन ने सन् 1192 में इस पर अधिकार किया और इसे अपनी राजधानी बनाया। लालकोट के समान इसकी प्राचीरों को काटती हुई दिल्ली-कुतुब और बदरपुर-कुतुब सड़कें गुजरती है। जैसे ही दर्शक दिल्ली की ओर से अधचिनी गाँव से आगे बढ़ता है सड़क के दोनों ओर किला राय पिथौरा की प्राचीरें, जिन्हें सड़क काटती हुई जाती है, देखी जा सकती है। परन्तु इन प्राचीरों के विस्तार का दृश्य कुतुबमीनार से बहुत अच्छी तरह देखा जा सकता है।

अनगढ़े पत्थरों से बनी ये प्राचीरें बहुत हद तक मलबे के ढेर से ढकी हुई है और इसका पूरा घेरा अभी तक खोजा नहीं जा सका है। ये मोटाई में 5 से 6 मीटर तक मोटी है और कुछ किनारों पर 18 मीटर तक ऊंची है और उनके बाहर की ओर चौड़ी खन्दक है। तैमूर के अनुसार इसमें तेरह द्वार थे। द्वारों में से जो अब भी मौजूद है, वे है-हौजरानी, बरका और बदायूं द्वार। इनमें से अन्तिम द्वार के बारे में इब्नबतूता ने उल्लेख किया है और संभवतः यह शहर का मुख्य प्रवेश द्वार था।

(ग) कुव्वतुल-इस्लाम मस्जिद

कच्छ जिले के सुल्तानों के पूर्व के समय के संस्मारकों को छोड़कर यह भारत में सब से पुरानी बची हुई मस्जिद है और इसमें 43.2 मीटर X33 मीटर आयाताकार चौक है जो स्तम्भयुक्त गलियारों से घिरा हुआ है (फलक 8)। कुतबुद्दीन ऐबक ने इसे सत्ताईस हिन्दू और जैन मन्दिरों के नक्काशीदार स्तम्भों और अन्य वास्तुकला संबंधी खंडों से निर्मित किया था। यह स्वयं उसने इस मस्जिद के मुख्य प्रवेश द्वार पर लगे अपने अभिलेख मे अंकित करवाया था। कुतबुद्दीन इस मस्जिद को जामे-मस्जिद कहता है और यह बताता है कि गिराये गये मन्दिरों में से प्रत्येक के मूल निर्माण पर

बीस लाख सिक्के खर्च किए गए थे। बाद में इसे ही कुव्वतुल इस्लाम (इस्लाम की ताकत) मस्जिद के नाम से पुकारा जाने लगा। उसके आंगन का पश्चिमी भाग नष्ट किए गए मंदिरों में से एक मंदिर का मूल स्थल है। उसके पूर्वी गलियारे के दो सिरों पर महिलाओं के लिए कक्षों की व्यवस्था करने के लिए एक ऊपरी मंजिल बनाई गई थी। चतुर्थ शताब्दी के विष्णु मंदिर का एक लौह स्तंभ जिसे अनंगपाल ने संभवतः पहले स्थापित किया था (पृष्ठ 13, 55) इबादतखाने के सामने स्थित है (फलक 7)।

दिल्ली पर कब्जा करने के तत्काल बाद कुतबुद्दीन ऐबक ने सन् 1192 में इस मस्जिद का निर्माण कराना शुरु किया और 1198 में इसे पूरा किया। बाद में इबादतखाने के सामने एक विशाल पत्थर का आवरण बनाया गया। इस इबादतखाने के बीच में एक मेहराब है जो 6.7 मीटर चौड़ा और 16 मीटर ऊंचा है, जिसके दोनों ओर इसी प्रकार के परन्तु छोटे मेहराब हैं जो सभी अंग्रेजी के एस की तरह वक्राकार हैं (फलक 7)। सिवाय शिखर के जहां कुछ पत्थर डाट पत्थरों की तरह लगाए गए है, मेहराबों का निर्माण टोड़ेदार है। आवरण पर अभिलेखों के किनारों और ज्यामितीय तथा फूलपत्तों की मिली जुली डिजाइनों सहित सुन्दर ढंग की नक्काशी की गई है परन्तु हिन्दू अभिप्रायों के लिए अभ्यस्त शिल्पियों के हाथ, लहराते हुए लता प्रतानों में तथा उसके बेलबूटों के लहराते हुए पत्तों के स्वाभाविक प्रदर्शन में यहां तक कि कुरान संबंधी लेखों के सुन्दर स्वरूपों में भी स्पष्टतः दिखाई पड़ते हैं।

बाद के दो शासकों ने इस मस्जिद का विस्तार किया। कुतबुद्दीन के उत्तराधिकारी और दामाद शम्सुद्दीन इल्तुतमिश (1211-36) ने मूल अहाते के बाहर उसकी स्तम्भ श्रेणियों और इबादतखाने का विस्तार करके इस मस्जिद के आकार को दोगुना कर दिया जिसके फलस्वरुप कुतुब मीनार अब मस्जिद के अहाते में ही आ गई। इल्तुतमिश निर्मित आवरण के मेहराब अभी भी मुख्यतः टोड़ेदार हैं यद्यपि लेखों सहित उनका फूलपत्तियों का मिलाजुला अलंकरण, जो मुख्यतः स्पष्ट दिखाई देता है, भाव की दृष्टि

से सरासेनिक जैसा है, जोकि कुतबुद्दीन के आवरण की मिश्रित सजावट से अलग है। अलाउद्दीन खिलजी (1296-1316) ने मस्जिद का अहाता बढ़ाकर काफी हद तक फिर से विस्तृत कर दिया था। उसने लम्बे पूर्वी किनारे पर दो प्रवेश द्वार बनाए और उत्तर और दक्षिण में एक-एक द्वार बनाया जिनमें से अन्तिम द्वार अलाई दरवाजा कहलाता है (फलक 11क, पृष्ठ 57) और अब भी यह पूरा का पूरा है। दरअसल उसने इस मस्जिद के क्षेत्र को दुगना कर दिया और दूसरी मीनार का निर्माण शुरु किया जो कुतबुद्दीन की मीनार से दोगुनी आकार में बनाए जाने के अभिप्राय से शुरु की गई थी यद्यपि यह अपूर्ण ही रही (फलक 25)।

(घ) कुतुब मीनार

कुतबुद्दीन ऐबक ने जब जग प्रसिद्ध कुतुबमीनार (फलक 9) की बुनियाद रखी जिसका अभिप्राय संभवतः मुख्य रुप से विजय मीनार का था किन्तु साथ ही इबादत के लिए जनता को बुलाने के हेतु मुअज्जिन (अजान देने वाले) के इस्तेमाल के लिए कुव्वतुल-इसलाम मस्जिद के साथ संलग्न मीनार के रुप में भी था। आश्चर्य की बात है कि बाद के एक नागरी लिपि में अंकित लेख में इसे अलाउद्दीन का विजय स्तंभ कहा गया है। शायद कुतबुद्दीन इसकी पहली मंजिल निर्माण करने में ही सफल रहा और अन्ततः इसकी शेष मंजिलें उसके उत्तराधिकारी इल्तुतमिश द्वारा पूरी की गयीं। इस मीनार पर अंकित नागरी और फारसी अभिलेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि सन् 1326 और 1368 में बिजली गिरने से इसको दो बार नुकसान पहुंचा था। पहला नुकसान मुहम्मद तुगलक के शासन काल (1325-51) में हुआ और स्पष्टतः सन् 1332 में इसकी उसके द्वारा मरम्मत कराई गई। दूसरे नुकसान पर फिरोजशाह तुगलक (1351-88) ने ध्यान देते हुए मरम्मत कराई। बाद में सन् 1503 में सिकन्दर लोदी (1489-1517) ने भी ऊपर की मंजिलों की मरम्मत करवाई थी। प्रारंभ में

इस मीनार की चार मंजिलें थीं जो सामने की ओर लाल और धूसर बलुआ पत्थरों की थी। सबसे ऊपर की मंजिल जिसे फिरोजशाह तुगलक के शासन काल के दौरान 1368 में नुकसान पहुंचा था उसके स्थान पर दो मंजिलें बनवाई गईं गयीं जिनमें संगमरमर का खुले तौर पर इस्तेमाल हुआ परन्तु चौथी मंजिल का निचला हिस्सा जो बलुआ पत्थर से निर्मित था, उसे उसकी मूल हालत में छोड़ दिया गया।

प्रारंभिक तीन मंजिलों की बुनियाद एक अलग ही योजना के आधार पर रखी गई है। सबसे निचली की योजना अन्तर देते हुए कोणीय तथा गोलाकार लम्बी धारियों सहित, दूसरी की गोलाकार और तीसरी की केवल कोणीय सहित, है। वे लम्बी धारियों की उसी सीध के साथ रखी गई है जो कि उन सभी मंजिलों में निष्पादित की गई है। इसके टोड़ों के बाहर दिखाई देने वाले छज्जे आरोही प्रक्षेप की लटकन की तरह हैं और अलग-अलग मंजिलों पर लेखात्मक सजावटी धारियां इसके सजावटी प्रभाव को और अधिक बढ़ा देते हैं (फलक 10 क)। भूतल पर इसका व्यास 14.32 मीटर है जबकि ऊपर यह 2.75 मीटर है। 72.5 मीटर की ऊंचाई तथा 379 सीढ़ियों वाली यह भारत में सबसे ऊंची पत्थर की मीनार है और मीनार का एक परिपूर्ण उदाहरण है जिसके बारे में यह प्रसिद्ध है कि ऐसी मीनार कहीं भी नहीं है।

एक परम्परा यह भी है कि दिल्ली के अन्तिम चौहान राजा पृथ्वीराज चौहान ने कुतुबमीनार का निर्माण किया था ताकि उसकी पुत्री अपनी दैनिक पूजा अर्चना के रूप में इसकी चोटी से पवित्र यमुना नदी का दर्शन कर सके। परन्तु इसकी सम्पूर्ण वास्तुकला गजनी में अभी तक मौजूद ईंटों के बने इसके दो आदिम रूप से इसलामी मूल के होने का संकेत देती है हालांकि हिन्दू शिल्पियों को निश्चित रूप से इसके निर्माण के लिए लगाया गया था जैसा कि उसकी सतह पर अंकित कुछ देवनागरी लेखों से स्पष्ट है। कई बार मंदिरों के नक्काशीयुक्त पत्थरों को इसमें इस्तेमाल किया हुआ पाया गया है। प्रारम्भ में यह एक छतरी से आच्छादित थी जो एक भूकम्प के

दौरान गिर गयी और मेजर स्मिथ ने बाद की मुगल शैली में इसके स्थान पर दूसरी छतरी उन्नीसवीं शताब्दी के शुरू में बनवाई। परन्तु यह इतनी बेमेल लगती थी कि इसे सन् 1848 में उतार दिया गया और इसे अब मीनार के दक्षिण-पश्चिम के दूर्वा क्षेत्रों में देखा जा सकता है।

(ड) लौह स्तम्भ

कुव्वतुल इस्लाम मस्जिद के आंगन में एक लौह स्तम्भ खड़ा है जिस पर गुप्तकाल की लिपि में संस्कृत में एक लेख है जिसे पुरालेखीय दृष्टि से चतुर्थ शताब्दी का निर्धारित किया गया है जिसकी पुष्टि भी उसके आमलक शीर्षक की विचित्र शैली द्वारा की गई है। अभिलेख में कहा गया है कि इस स्तम्भ का निर्माण चन्द्र नामक एक शक्तिशाली राजा की याद में, जिसे अब गुप्त वंश के चन्द्रगुप्त द्वितीय (375-413) के रूप में पहचाना जाता है, विष्णुपद के रूप में विख्यात पहाड़ी पर भगवान विष्णु के ध्वज के रूप में किया गया था। इस स्तम्भ के ऊपर एक गहरा छेद यह संकेत करता है कि इसका एक अतिरिक्त अंग शायद गरुड़ की मूर्ति होगी जो विष्णु के ध्वज के रूप में विष्णु मंदिर का संकेत देने के लिए उस पर लगाई गई थी।

स्पष्ट है कि यह स्तम्भ यहां किसी और स्थान से लाया गया है क्योंकि इस स्थल पर चतुर्थ शताब्दी के और कोई अवशेष नहीं प्राप्त हुए हैं। यह एक पक्की भाटीय परम्परा है कि इसे यहां तोमर राजा अनंगपाल लाया था, परन्तु कहां से लाया गया था, यह कोई नहीं जानता। उसे दिल्ली के बसाये जाने का भी श्रेय प्राप्त है (पृष्ठ 13) इस स्तम्भ का आधार गुमटेदार है जिसकी बुनियाद में लोहे के छोटे-छोटे टुकड़े बंधे हुए हैं और वर्तमान फर्श की सतह के नीचे छिपा हुआ भाग एक सीसे की फलक से ढका हुआ है।

इस कुछ-कुछ शुंडाकार स्तंभ की कुल ऊंचाई 7.20 मीटर है जिसमें से 93 सेंटीमीटर जमीन के नीचे गड़ा हुआ है। इस स्तम्भ की धातु लगभग विशुद्ध पिटवा लोहे जैसी पाई गई है। जमीन के नीचे के भाग में जंग लगने

के कुछ आसार नजर आते हैं परन्तु यह बहुत ही धीमी गति से लग रहा है। इतने विशाल लौह स्तम्भ का निर्माण, जो कि अपने सोलह सौ वर्ष के अस्तित्व के दौरान बहुत अधिक नहीं बिगड़ा है, प्राचीन भारतीयों के धातुकर्मीय कौशल का स्थायी रूप से साक्षी है।

(च) इल्तुतमिश का मकबरा

कुतबुद्दीन ऐबक के उत्तराधिकारी और दामाद शम्सुद्दीन इल्तुतमिश (1211-36) का मकबरा कुव्वतुल-इस्लाम मस्जिद के उत्तर- पश्चिम में है। सुल्तान-गारी के मकबरे के निर्माण के केवल पांच वर्ष बाद इल्तुतमिश ने स्वयं इसे लगभग सन् 1235 में बनवाया था (पृष्ठ 67)। पिछली संरचनाओं से यह बिल्कुल अलग है और यह भारतीय इस्लामी वास्तुकला के विकास में उस चरण की एक मिसाल है जबकि निर्माता ने मंदिरों को नष्ट करके उनकी सामग्री का सहारा लेना छोड़ दिया था यद्यपि बगली डाटों के नीचे मेहराबों और अर्ध गुम्बदों का निर्माण स्वदेशी टोड़ेदार तरीके से किया गया था।

बीच में कब्रसहित उसके मकबरे का कक्ष, जो अन्दर की ओर लगभग 9 वर्ग मीटर है तथा जिसके सामने की ओर लाल बलुए पत्थर लगे हैं, निश्चित रूप से एक गुम्बद से ढके जाने के अभिप्राय से बनाया गया था जैसा कि बगली डाटों से स्पष्ट है, जो कि इस इमारत में पहली बार दिखाई पड़ती हैं। यह माना जाता है कि प्रारंभिक गुम्बद गिर गया और इसके स्थान पर फिरोजशाह तुगलक (1351-88) ने दूसरा गुम्बद बनवाया था परन्तु यह भी बाकी नहीं बचा। पश्चिम की ओर के अंदरूनी हिस्से में तीन मिहराबें हैं जिनमें से बीच की इबादतखाने का काम देने के लिए ऊंची और संगमरमर से अलंकृत है जबकि दूसरे भुजाओं में मेहराब युक्त प्रवेश द्वार हैं। बाहर से यह मकबरा सादा है परन्तु प्रवेश द्वारों पर इसे शानदार ढंग से तथा अन्दर की ओर कूफ़ी और नस्ख लेखों तथा सारासेनिक परम्परा में ज्यामितीय

और बेलबूटों के मिले जुले नमूनों सहित नक्काशी की गई है यद्यपि इसकी नक्काशियों में से अनेक अभिप्राय हिन्दू अलंकरण के परिचायक हैं। इस श्रेणी में चक्र, घंटी और जंजीर, फीता, कमल और हीरा आते हैं। इसके प्रचुर अलंकरणों को देखकर फर्ग्युसन ने कहा था कि यह इसलामी उद्देश्यों के लिए हिन्दू कला के प्रयोग किए जाने का एक शानदार उदाहरण है।

(छ) अलाई-दरवाजा

कुव्वतुल-इस्लाम मस्जिद का दक्षिणी फाटक, जिसका विस्तार अलाउद्दीन खलजी ने किया था, अलाई-दरवाजा के नाम से विख्यात है (फलक 11क) और इसमें अनेक लेख जिन्हें एक अलंकरणीय सतह का रूप देने के लिए तैयार किया गया है उनमें से तीन इसके निर्माण का समय 710 हिजरी (सन् 1311) बताते हैं। यह पहली इमारत है जिसमें निर्माण और ज्यामितीय अलंकरण के इसलामी सिद्धान्तों का सही तौर पर इस्तेमाल किया गया है और यह कुछ सल्जुकी लक्षणों को भी पूरा करती है जिसने खलजी वास्तुकला को प्रभावित किया था (पृष्ठ 21)। इन विशेषताओं में सबसे महत्वपूर्ण है एक बीच की गुमटी सहित चौड़ी और फूली हुई गुम्बद, नुकीले घोड़े के नाल के आकार की मेहराबें और बगली डाटें तथा इसकी मेहराबों के नीचे "कमल कली" के झब्बे।

लाल बलुआ पत्थरों से निर्मित यह शानदार प्रवेश द्वार सभी किनारों पर मेहराबी द्वारों सहित 17.2 वर्ग मीटर है और यह मेहराबों की संकेन्द्रित शृंखलाओं सहित बगली डाटों द्वारा पूरा किए गए एक अष्टभुजाकार आधार पर बने एक चौड़े परन्तु उथले गुम्बद से आच्छादित है। उत्तरी मेहराब अर्द्ध गोलाकार है जबकि दूसरी मेहराबें एक नुकीले घोड़े के नाल के आकार की है जो वास्तविक मेहराब के सिद्धांत पर विकिरणकारी डाट पत्थरों पर बिछायी गयी है। न केवल इन मेहराबों की निचली कमानी ही "कमल की

कली वाले झब्बों" से अलंकृत है बल्कि छेददार किनारे की खिड़कियां भी इन्हीं से अलंकृत की गई हैं। शानदार आनुपातिक आकार, अन्दर की ओर भव्य ज्यामितीय नक्काशी, नस्ख स्वरुपों से युक्त सफेद संगमरमर के लेखयुक्त पट्ट और लाल पत्थर (फलक 10 ख) पर अंकित अन्य अलंकरणयुक्त सज्जाएं इस इमारत को बहुत ही रमणीय बना देते हैं। यह सही ही कहा गया है कि "यह इस्लामी वास्तुकला के बहुमूल्य रत्नों में से एक है"।

(ज) अलाई-मीनार

कुतुबमीनार के उत्तर में अधूरी बनी इस मीनार को अलाउद्दीन खलजी ने शुरु किया था परन्तु वर्तमान 24.5 फीट की ऊंचाई सहित यह मुश्किल से पहली ही मंजिल तक बन पाई थी जब उसका देहान्त हो गया और यह अपूर्ण ही रह गयी। अलाउद्दीन ने कुव्वतुल-इस्लाम मस्जिद का आकार दोगुना कर दिया था और इसकी मीनार भी वह चाहता था कि विस्तारित मस्जिद सहित अनुपात में कुतुबमीनार की ऊंचाई से दोगुनी बने।

(झ) अलाउद्दीन का मकबरा और मदरसा

कुव्वतुल-इस्लाम मस्जिद के दक्षिण-पश्चिम में कुछ कमरों और बड़े कक्षों के खंडहर हैं जो इसे अंग्रेजी के एल-आकार का खंड बनाते हैं। यह विश्वास किया जाता है कि ये अलाउद्दीन के मकबरे और मदरसे के द्योतक हैं जोकि उसने इसलाम धर्म और धार्मिक पुस्तकों की शिक्षा देने के लिए शुरु किया था। दक्षिणी हिस्से का बीच का कक्ष उसका मकबरा समझा जाता है। कालेज और मकबरे की मिली-जुली संकल्पना भारत में यहां पहली बार दिखाई पड़ती है और शायद यह सल्जूकी-परम्पराओं से प्रेरित है।

(अ) अन्य संस्मारक

जिस प्रवेश द्वार से दर्शक कुतुब क्षेत्र में प्रवेश करता है, वह दरअसल बाद की मुगलकालीन सराय का प्रवेश द्वार है। अलाई-दरवाजे के दक्षिण-पश्चिम में और इसके पूर्वी फाटक से पहुंचने पर संत इमाम मुहम्मद अली का एक छोटा आकर्षक मकबरा पड़ता है जो इमाम जामीन के नाम से मशहूर थे जो तुर्किस्तान के वाशिन्दे थे तथा सिकन्दर लोदी के शासन काल (1488-1517) में भारत आये थे। पलस्तर से ढके बलुआ पत्थर के एक गुम्बद से आच्छादित और एक अष्टभुजाकार ड्रम से उठते हुए इसकी दीवारें जालीदार पत्थर के परदों से बनी हुई हैं जो लोदी काल की विशेषता है। स्पष्ट है कि इमाम जामीन, कुव्वतुल-इसलाम मस्जिद से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण कार्यों को अंजाम देते थे। एक लेख के अनुसार उन्होंने अपना मकबरा 944 हिजरी (1537-38) में बनवाया था और उसके एक साल बाद उनका निधन हुआ था।

कुतुबमीनार के दक्षिण- पूर्व में लगभग 150 मीटर की दूरी पर अधम खां के भाई मुहम्मद कुलीखां का अष्टभुजाकार मकबरा है जो अकबर का एक सेनापति और उसका धात्री भाई था (पृष्ठ 40)। सत्रहवीं सदी के प्रारम्भ में निर्मित यह मकबरा मुगल राजदरबार में रेजीडेंट सर चार्ल्स थियोफिलस मेटकाफ द्वारा बरसात के मौसम में अपने निवास-स्थान के रूप में इस्तेमाल किया जाता था। दरअसल उसने कुछ और भी इमारतें अपने इस्तेमाल के लिए नकली मुगल शैली में बनवाईं थीं जिन्हें पास-पड़ोस के खंडहरों में देखा जा सकता है। उसकी दो सीढ़ी नुमा पिरामिडीय मीनारें, जो गढ़गज के नाम से जानी जाती हैं, विश्राम गृह और कैन्टीन के पीछे स्थित हैं।

मूल लालकोट के भीतर और कुतुब-मेहरौली सड़क से आते हुए जोगमाया का मन्दिर पड़ता है, जो अकबर द्वितीय 1806-37 के शासन काल में एक शताब्दी से अधिक पूर्व बनवाया गया था। यह योगिनियों के

पुराने मन्दिर के रूप में प्रसिद्ध स्थल पर है, जिनके नाम पर दिल्ली को एक वैकल्पिक नाम योगिनीपुर दिया गया था (पृष्ठ 16)। उसके उत्तर में मूल लालकोट के बाहर अनंग ताल नाम के एक तालाब के खंडहर हैं जिसके बारे में यह कहा जाता है कि इसे अनंगपाल ने बनवाया था।

(5) मेहरौली

(क) अधम खां का मकबरा

अधम खां का मकबरा बस्ती में पहुंचने से ठीक पहले कुतुब-मेहरौली सड़क के उत्तर में स्थित है। लालकोट की दीवारों पर स्थित और एक अष्टभुजाकार दीवारें द्वारा घिरे हुए ऊंचे सतह से उठा हुआ कोनों में छोटे बुर्जों सहित यह एक लोदी शैली के गुम्बदवाला अष्टभुजाकार कक्ष है जिसकी हरेक दिशा के बरामदे में तीन-तीन दरवाजे हैं परन्तु मुंडेरों के नीचे सामान्य छज्जा नहीं है। यह भूल-भूलैया के नाम से लोकप्रिय है क्योंकि दर्शक इसकी दीवारों की मोटाई में अनेक रास्तों के बीच अक्सर अपनी राह भूल जाता है।

अकबर की धाय माहम अंगा का पुत्र अधम खां एक अमीर था और अकबर की फौज में सेनापति था। सन् 1562 में एक दूसरी धाय जी-जी अंगा के पति अतगा खां से उसका झगड़ा हो गया और उसने उसको मार डाला जिसकी वजह से बादशाह के आदेश से उसे आगरे के किले की प्राचीरों से नीचे फेंक दिया गया और वह मर गया। उसकी मां भी शीघ्र ही उसके शोक में मर गई और इन दोनों को इस मकबरे में दफना दिया गया, जिसे अकबर ने बनवाया था।

(ख) बावलियां (सीढ़ीयुक्त कुएं)

मेहरौली में और उसके आसपास अनगढ़े पत्थरों से अनेक सीढ़ीयुक्त बावलियां बनवाई गई, जिनमें अन्यों की तुलना में दो अधिक प्रसिद्ध हैं। तथा-कथित गंधक की बावली, जिसके पानी में गंधक की गंध है अधम खां के मकबरे से लगभग 100 मीटर दक्षिण में स्थित है। यह विश्वास किया जाता है कि इसे इल्तुतमिश (1211-36) के शासन काल में बनवाया गया था। इसके दक्षिणी छोर पर एक गोलाकार कुएं सहित इसकी पांच श्रेणियां हैं। यह गोता लगाने वाला कुआं भी कहलाता है क्योंकि गोताखोर दर्शकों के मनोरंजन के लिए ऊपर की श्रेणियों से इसमें छलांग लगाते हैं।

इसके अतिरिक्त 400 मीटर दक्षिण की ओर दूसरा चार स्तरों वाला सीढ़ीयुक्त कुआं है जो "राजों की बैन" के नाम से जाना जाता है, ऐसा लगता है कि उसको यह नाम राजों (कारीगरों) द्वारा इसका इस्तेमाल किये जाने के कारण मिला था। इसकी ऊपर की दीवारों के भीतर की सीढ़ियां उसे एक मस्जिद से जोड़ती हैं, जिसकी छतरी में 912 हिजरी (सन् 1506) का एक अभिलेख है जिसमें यह बतलाया गया है कि यह सिकन्दर लोदी (1498-1517) के शासन काल में बनवाया गया था।

(ग) दरगाह-कुतुब-साहिब

ख्वाजा कुतबुद्दीन बख्तियार काकी कुतुब साहिब के लोकप्रिय नाम से जाने जाते थे और जिनका उपनाम काकी था, क्योंकि अपने ध्यान के दौरान उन्हें छोटे-छोटे केक, जो काक कहलाते थे, खिलाए जाते थे। वे फारस में उश में पैदा हुए थे। वे खुरासान और बगदाद के रास्ते से यात्रा करते हुए प्राचीनतम मुसलमान विजेताओं के साथ भारत आये थे और अजमेर के ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के शिष्य बन गए और बाद में उनके मजहबी

उत्तराधिकारी भी बने। वे इल्तुतमिश (1211-1236) के शासन काल में रहे और 1236 में गुजर गये।

उनकी कब्र, जो प्रारम्भ में सीधीसादी और मिट्टी की थी परन्तु अब संगमरमर के बाड़े के भीतर घिरी हुई है और स्तंभों पर आधारित एक गुम्बद से आच्छादित है, जिसे सन् 1944 में पूरा किया गया यह इस दरगाह का मुख्य स्थल है। यह एक आयताकार अहाते के मध्य स्थित है जिसे दिल्ली के विभिन्न शासकों ने अलंकृत किया था और जिसका बहुत ही रमणीय भाग पश्चिमी दीवार है जिसमें वनस्पतीय बहु रंगीन टाइल लगे हुए है जिनके बारे में यह कहा जाता है कि औरंगजेब ने इन्हें जड़वाया था।

इन ख्वाजा को विभिन्न शासक बड़ा सम्मान देते थे और उनमें से बहुत से उसकी कब्र के आसपास अनेक अहातों में दफन है। सारा का सारा स्थान एक प्रकार के कब्रिस्तान में बदल दिया गया है। यहां जो दफन किए गए उनमें बहादुर शाह प्रथम (1707-12), शाह आलम द्वितीय (1759-1806), अकबर द्वितीय (1806-37) और उसके परिवार के अन्य सदस्य है। बहादुरशाह द्वितीय (1837-57) ने अपने दफनाये जाने के लिए यहां एक कब्र बनवाई थी परन्तु इसका इस्तेमाल नहीं हो पाया क्योंकि उसे निर्वासित कर रंगून भेज दिया गया जहां उसकी मृत्यु हो गई और वहीं उसे दफन कर दिया गया।

इस दरगाह में विभिन्न प्रयोजनों के लिए कई फाटक तथा बड़े कक्ष हैं जैसे नौबत खाना (नक्कार खाना), मजलिस खाना (सभा भवन) और तोश खाना, मस्जिदें, तालाब और एक बावली। इसके मुख्य उत्तरी फाटक पर लगे अभिलेख के अनुसार संत फरीदुद्दीन शकरगंज के एक उत्तराधिकारी शेख खलील ने, जो स्वयं ख्वाजा कुतबुद्दीन काकी के शिष्य और उत्तराधिकारी थे, शेरशाह के शासन काल (1538-1545) में इसका सन् 1542 में निर्माण करवाया था। महत्वपूर्ण मस्जिदों में तीन मेहराबदार द्वारों और आंगन के पूर्वी कोनों में दुमंजली मीनारों सहित संगमरमर से निर्मित एक छोटी मोती-मस्जिद है। यह विश्वास किया जाता है कि बहादुर शाह

प्रथम ने लगभग सन् 1709 में इसे बनवाया था। इस दरगाह के अहाते में दो फाटक फर्रुखसियर (1713-19) ने जोड़े थे।

इस दरगाह के पश्चिमी प्रवेश द्वार के बाहर जो अजमेरी फाटक के नाम से विख्यात है, जफर महल के खंडहर हैं। इस महल का निर्माण अकबर द्वितीय ने करवाया था जिसके मुख्य द्वार के बारे में यह कहा जाता है कि इसका पुनः निर्माण बहादुरशाह द्वितीय ने करवाया था और इसे अपना उपनाम 'जफर' दिया था। लाल बलुआ पत्थर से निर्मित संगमरमर द्वारा उभारा गया यह एक ऊंचा तीन मंजिला भव्य भवन है, जिसके अन्दर की ओर छत्तों सहित सामने की ओर कमरे हैं जो लाल किले में (पृष्ठ 148) छत्ता चौक के समान उसी नमूने में है।

(घ) हौज़े-शम्सी

मेहरौली के बाहरी तरफ दक्षिण की ओर यह बड़ा तालाब (हौज) है जिसके बारे में यह कहा जाता है कि शम्सुद्दीन इल्तुतमिश (1211-36) ने लगभग 1230 में इसे बनवाया था। परम्परा यह है कि पैगम्बर ने एक बार इल्तुतमिश को स्वप्न में दर्शन दिए थे और इस स्थल की ओर तालाब के निर्माण के लिए उपयुक्त होने के लिए इशारा किया था, जोकि इसके दिमाग में था। अगले दिन सबेरे इल्तुतिमश ने पैगम्बर के घोड़े के खुरों में से एक खुर का चिन्ह देखा जिसके आस-पास उसने एक गुम्बदनुमा मंच बनवाया और तालाब खुदवाया।

प्रसिद्ध मूर यात्री इब्नबतूता इस तालाब की विशालता से प्रभावित हुआ, जिसकी आपूर्ति बरसात के पानी से होती थी और जिसके बीच में एक दुमंजिला पत्थर का महल था जिस तक इसके भरा होने पर केवल नावों से पहुंचा जा सकता था। इस तालाब के दक्षिण-पश्चिमी कोने के समीप स्थित बारह स्तम्भों पर आधारित लाल बलुआ पत्थर की गुम्बदयुक्त इमारत के बारे में समझा जाता है कि यही इल्तुतमिश द्वारा निर्मित थी परन्तु यह

विश्वास किया जाता है कि प्रारम्भ में यह बीच में स्थित थी खुर के छापयुक्त मूल पत्थर के बारे में यह माना जाता है कि इसे पहले हटा दिया गया था और जो वर्तमान पत्थर है वह बाद का एक नया पत्थर है।

इस तालाब का जल पवित्र माना जाता है और इसके आस-पास मुसलमान सन्तों की अनेक कब्रें है। फूलवालों की सैर या सैरे गुलफरोशाँ के नाम से विख्यात मेले में फूल विक्रेता कुतुब साहब की दरगाह और जोगमाया के मंदिर पर फूलों से अलंकृत बड़े-बड़े पंखे चढ़ाते हैं जो इस तालाब के बहाव के निकास से, जिसे झरना कहते है, शुरु होता है।

(ङ) जहाज महल

बीच में एक आयताकार आंगन और इसके किनारों पर मेहराबदार कक्षों वाली इमारत जिसके पूर्व में एक प्रवेश द्वार है, हौज शम्सी के उत्तर-पूर्व में है। इसे शायद लोदी काल (1451-1526) के दौरान बनाया गया था और यह शायद एक आमोद-प्रमोद का सैरगाह या तीर्थ यात्रियों के लिए आवास का काम देता था (फलक 20 क)1 इसकी पश्चिमी दीवार में बनी एक मिहराब यह संकेत देती है कि इसका कुछ भाम निजी इस्तेमाल के लिए मस्जिद के रूप में किया जाता था। इसके कक्षों में बगली डाटों की अनेक डिजाइन हैं। इसके कोने पर चौकोर छतरियाँ हैं और प्रवेशद्वार एक गुम्बदयुक्त इमारत है जो नीले टाइलों से अलंकृत है। फूल वालों की सैर का वर्तमान जलसा यहां होता है। एक विशाल झील के किनारे इसकी जहाज जैसी आकृति के कारण इसे जहाज महल का नाम मिला होगा।

(6) मेहरौली उपमार्ग

(क) बलबन का मकबरा

गुड़गांव की ओर मेहरौली के उपमार्ग के पश्चिमी किनारे पर पुरानी मेहरौली, जो अब वीरान है, के विशाल खंडहर हैं। जैसे ही दर्शक कुतुबमीनार की ओर से जाता है, उसका सामना इनमें बहुत ही जीर्ण-शीर्ण अनगढ़े पत्थरों से निर्मित चौकोर कक्ष से होता है, जिसके सभी चारों किनारों पर मेहराबी द्वार हैं। इसके बारे में यह माना जाता है कि यह गयासुद्दीन बलबन का मकबरा है। उसका भारतीय इस्लामी वास्तुकला के विकास में महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि यहाँ पहली बार इसमें एक सही मेहराब (ट्रू आर्च) के इस्तेमाल को देखते हैं।

यह माना जाता है कि इसके पूर्व की ओर के ध्वस्त आयताकार कक्ष में बलबन के पुत्र मुहम्मद की कब्र थी, जो खां शहीद के नाम से मुलतान के निकट सन् 1285 में मंगोलों के विरुद्ध युद्ध में लड़ता हुआ मारा जाने के कारण प्रसिद्ध हुआ। एक और भी दूसरा मकबरा, जो दक्षिण की ओर अधिक दूर नहीं है, खां शहीद के मकबरे के नाम से जाना जाता है।

(ख) जमाली-कमाली की मस्जिद और मकबरा

जमाली शेख फज़लुल्लाह का तखुल्लस था जो जलाल खां के नाम से भी जाना जाता था। वह एक सन्त और कवि था जो सिकन्दर लोदी के शासन काल से हुमायूं के शासन काल तक जीवित रहा। उसके नाम से जुड़ी मस्जिद बलबन के मकबरे के दक्षिण में लगभग 300 मीटर की दूरी पर स्थित है और इसे बाबर के शासन काल में लगभग 1528-29 में शुरू किया गया था और हुमायूं के शासन काल में पूरा किया गया था। उसका मकबरा, जो पास ही स्थित है, संभवतः लगभग 1528-29 में उसकी मृत्यु

(1535-36) से पहले बनवाया गया था। चूंकि इस मकबरे में दो कब्रें हैं, एक के बारे में यह विश्वास किया जाता है कि यह जमाली की है और दूसरी एक अज्ञात व्यक्ति कमाली की है: इस प्रकार इन संस्मारकों को दोहरे नाम से जाना जाता है।

मस्जिद का मूल फाटक, जो अभी तक मौजूद है, दक्षिण दिशा में है। इसके प्रार्थनागार हाल में पांच मेहराबी दरवाजे हैं जो चतुष्केन्द्रित झुकाव वाले और उनके चाप स्कंधों को नक्काशीयुक्त पट्टों और गोलाकार फलकों से अलंकृत किया गया है। बीच की मेहराब दूसरी मेहराबों से ऊंची है और ज्यादा शानदार तरीके से सजाई गई है तथा इसके बगल में गोलाई वाले अर्धस्तम्भ हैं। पश्चिमी दीवार में आलों को भी सजाया गया है और बीच के और उत्तरी आलों को कुरान संबंधी लेखों से सजाया गया है। प्रार्थनागार के दोनों कोनों पर दो जीने दूसरी मंजिल पर मस्जिद के पीछे सीधी एक तंग वीथी तक जाते हैं जिनमें पीछे की ओर तीन रोशनदान, एक दक्षिण की ओर और एक छोटी खिड़की बीच की मेहराब के ऊपर है। पीछे के कोनों पर एक-एक अष्टभुजाकार बुर्ज हैं। मुंडेर के नीचे सामने की ओर कमल की कलियों की लटकन हैं। एक ही गुम्बद बीच के खंड को ढकता है।

वास्तुकला की दृष्टि से यह शानदार मस्जिद मोठ मस्जिद (पृष्ठ 77) से लेकर शेरशाह मस्जिद (पृष्ठ 123) तक के संक्राति काल की ओर इंगित करती है जिनमें से दोनों की कुछ विशेषताएं इसमें हैं।

जमाली-कमाली का मकबरा एक अहाते के भीतर इस मस्जिद के अत्यन्त निकट उत्तर में है। इसका छोटा कक्ष सपाट-छत वाला है और इसकी अन्दरूनी छत और दीवारें रंगीन टाइलों और उत्कीर्ण नमूनों तथा चित्रिन पलस्तर से बहुत ही सुन्दर ढंग से अलंकृत की गई है जिनमें जमाली द्वारा रचित कविताए भी शामिल है।

(ग) माढी - मस्जिद

आसपास की अनेक अन्य मस्जिदों के बीच एक मस्जिद जो माढी मस्जिद के नाम से प्रसिद्ध है जमाली-कमाली मस्जिद से लगभग 500 मीटर दक्षिण में स्थित कुछ असाधारण है। उसके प्रार्थना कक्ष में एक खुली दीवार वाली मस्जिद और एक ढकी हुई मस्जिद की मिली-जुली विशेषताएं हैं। दीवारी मस्जिद की दोनों बगलों में तीन खंड सपाट छतों वाले हैं और उनमें तीन-तीन मेहराबी दरवाजे हैं। यह मस्जिद टाइलों से शानदार ढंग से अलंकृत है।

पूर्व की ओर उसका गुम्बदयुक्त चौकोर प्रवेश द्वार भूरे पत्थर से निर्मित है जिसकी प्रक्षिप्त खिड़कियां लाल पत्थर की हैं। अपने अपेक्षाकृत विशाल अनुपातों सहित लोदी काल की बड़ा-गुम्बद मस्जिद (पृष्ठ 90) के प्रवेश द्वार की याद कराती हुई यह मस्जिद सड़क के किनारे से बड़ी भव्य लगती है। संभवतः इसे लोदी या आरम्भिक मुगल काल में बनवाया गया।

7. सुल्तान ग़ारी का मकबरा

मेहरौली-पालम सड़क पर कुतुबमीनार से लगभग 8 किलोमीटर दक्षिण पश्चिम में सुल्तान गारी का मकबरा है, जो कच्छ जिले के कुछ पूर्व सल्तनत-काल के स्मारकों को छोड़कर भारत में एक इसलामी मकबरे का प्रथम उदाहरण है। उसके मुख्य प्रवेश द्वार पर अंकित लेख से पता चलता है कि इल्तुतमिश (1211-36) ने सन् 1231 में इसे अपने सबसे बड़े पुत्र तथा वारिस शहजादे नासिरुद्दीन महमूद के अवशेषों पर बनवाया था। इस शहजादे ने अपने पिता की ओर से अनेक युद्धों में भाग लिए और सन् 1229 में लखनौती में उसका देहान्त हुआ। यह स्मारक मकबरों से संबंधी वास्तुकला के उसी चरण का एक उदाहरण प्रस्तुत करता है, जो कि हमें कुव्वतुल-इस्लाम मसजिद में मिलता है: यह मन्दिरों से हटाये गए वास्तुकला संबंधी अवशेषों से निर्मित किया गया है और इसमें कड़ियों को मिलाकर इसकी संरचना की गई है जिसके स्वदेशी वास्तुकार जानकार थे।

प्राचीन मंदिरों से हटाये गए दो स्तरों वाले स्तम्भों पर टिके हुए अष्ट-भुजाकार मकबरे के कक्ष के आसपास अनगढ़े पत्थरों को इकट्टा करके इस कक्ष की लगभग आधी ऊंचाई तक यहां एक चौकोर चबूतरा बनाया गया था जिसने आंगन का रूप ले रखा है और चबूतरे की ओर से पहुँचने पर यह कक्ष एक भूमिगत कक्ष (गार) का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। शहतीरों और सरदलों की व्यवस्था करके इस कक्ष पर छत डाली गई है और इसे चूना कंकरीट से ढका गया (फलक 13) है। दक्षिण की ओर एक द्वार से जुड़ी हुई दीवार के सार भाग में हाल ही में पाई गई सीढ़ियों की पंक्तियां इस बात का संकेत करती है कि अन्दर की ओर प्रारंभ में पहुंचने का मार्ग शायद इसी सीढ़ी के जरिए था। बाद में परत को तोड़कर दुसरा द्वार बनाया गया। मकबरे का चबूतरा पूर्व और पश्चिम की ओर स्तम्भावलियों और अन्य दोनों दिशाओं में सामान्य दीवारों से घिरा हुआ है जिसके कोनों में गुम्बदनुमा बुर्ज है जोकि इस संस्मारक को छोटे किले का रूप दे देते हैं। गलियारा संभवतः एक मदरसे के रुप में प्रयुक्त होता था। पश्चिमी खंड के मध्य में स्तम्भों पर निर्मित एक संगमरमर का इबादत संबंधी मिहराब है जो कुरान संबंधी लेखों से शानदार ढंग से अलंकृत किया गया है। इस इबादत खाने के फर्श में दुबारा इस्तेमाल किया गया एक संगमरमर का योनिपट्ट मिली है। इस मकबरे के कक्ष के बाहर सामने की ओर एक प्राचीन भूरे बलुए पत्थर की परत के ऊपर संगमरमर की परत है और ऐसा लगता है कि इसका निर्माण फिरोजशाह (1351-88) ने करवाया था जिसने यहां कुछ मरम्मत करवाये जाने का उल्लेख किया है।

हाल ही में कंकरीट की छत की मोटाई में जड़े किसी मन्दिर से कुछ तक्षित सरदल (फलक 5 क) और एक वेदिका में प्रयुक्त सीधा खड़ा पत्थर पाया गया है जो यह संकेत देता है कि लगभग सातवीं और आठवीं शताब्दी में यहां एक मंदिर मौजूद था। यहां अनेक स्थानों पर भूरे पत्थर तथा संगमरमर और यहां पर पड़े आमलकों का पुनः प्रयोग किया गया जिनके

बारे में यह प्रतीत होता है कि वे यहां किसी अन्य और बाद के मन्दिर से लाए गए थे (पृष्ठ 11)।

सुल्तान ग़ारी मकबरे के दक्षिण में इल्तुतमिश के दो पुत्रों, क्रमश: रुक्नुद्दीन फिरोजशाह (निधन 1237) और मुइज़ुद्दीन बहराम शाह निधन 1241 के स्तम्भवाले मकबरे हैं। ये थोड़े समय के लिए राजगद्दी पर बैठे। इनमें से पहला 1235 में और दूसरा 1241 में राजगद्दी पर बैठा था।

एक शिला फलक पर अंकित सन् 1361 के संस्कृत अभिलेख, जो इस मकबरे के पश्चिम में बाद के समय में किसी घर में इस्तेमाल किया हुआ पाया गया है, के अनुसार किसी विवाह समारोह के अवसर पर एक तालाब खुदवाया गया। साथ ही एक लिंग का पत्थर एक अंधी मेहराब के भीतर एक सरदल के रूप में प्रयुक्त हुआ पाया गया है। इसके पास-पड़ौस में एक मस्जिद के खंडहर हैं, संभवत: वह फिरोजशाह द्वारा बनाई गई थी, जबकि यहां के अन्य पुरावशेष पश्च मुगल काल के हो सकते हैं।

8. महीपालपुर

परम्परा के अनुसार अन्य किसी तोमर राजा महीपाल से सम्बन्धित महीपालपुर का गांव मेहरोली-पालम सड़क पर सुल्तान गारी के मकबरे से 4 किलोमीटर पश्चिम में स्थित है। इस गांव के दक्षिण-पश्चिम के बिल्कुल निकट अनगढ़े पत्थरों की चिनाई का एक बड़ा बांध है जिसके बारे में यह विश्वास किया जाता है कि इसे फिरोजशाह तुगलक ने अपनी सिंचाई योजनाओं के एक भाग के रूप में बनवाया था।

गांव के भीतर एक दो गलियारे वाला गहरा पत्थरों से निर्मित कक्ष है जिसके तीन मेहराबी दरवाजे हैं और दोनों ओर एक-एक कमरा है। उसकी छत पत्थर के घेरेबन्द छज्जे से घिरी हुई है जो फिरोजशाह की वास्तुकला (पृष्ठ 25) की विशेषता है और सामान्यत: एक महल के रूप में विख्यात है तथा आजकल एक पाठशाला के रूप में प्रयुक्त संभवत: फिराजशाह द्वारा

इस बांध पर आने वाले जंगली जानवरों का शिकार करने के लिए शिकार गाह के रूप में बनवाया गया था।

9. पालम की मस्जिद

पालम गांव के दक्षिण-पूर्वी किनारे पर, जो अपने संस्कृत में अंकित अभिलेख (पृष्ठ 15) के लिए विख्यात है और जहां इब्नबतूता आया था, अपने इबादत खाने के सामने तीन मेहराबी दरवाजों सहित ईंटों से बनी एक मस्जिद है जिसकी अपनी छत के चार कोनों पर छोटी गुम्बदयुक्त छोटी-छोटी गुम्मटें हैं। इसके बीच के कक्ष की उत्तरी मेहराब पर अरबी और फारसी के मिले जुले गद्य में अंकित अभिलेख के अनुसार इसे बाबर के शासन काल (1526-30) में किसी गजनफार ने 935 हिजरी (सन् 1528-29) में बनवाया था। इस प्रकार यह दिल्ली में बाबर के शासन काल की एक मात्र बची हुई इमारत है और भारत में उसके काल की कुछेक इमारतों में से एक है (पृष्ठ 34)। इस मस्जिद पर फारसी पद्य में अंकित दूसरा लेख उसी विषय को कुछ थोड़ा बहुत मामूली हेरफेर से दोहराता है।

10. बेगमपुर

(क) बेगमपुरी मस्जिद

दिल्ली-मेहरोली सड़क, जो अब श्री अरबिन्दो मार्ग कहलाती है, पर दिल्ली से 15 किलोमीटर स्थित अरविंदो आश्रम से एक तंग सड़क बेगमपुर गांव को जाती है। गांव के भीतर बेगमपुरी मस्जिद है जिसे फिरोजशाह तुगलक के बजीरे आजम (पृष्ठ 27) खाने-जहां जुनां शाह ने बनवाया था। यह उसके द्वारा बनवाई गई सात प्रसिद्ध मस्जिदों में से एक है। बगलों में मेहराबी तथा स्तम्भयुक्त गलियारों तथा एक तीन-गलियारे वाले गहरे

इबादत खाने से घिरे 94 मीटर x 88 मीटर बड़े आंगन सहित इस मस्जिद का अनगढ़े पत्थरों से निर्मित ढांचा एक ऊंची कुरसी पर बना है। उसके गलियारों में उत्तर, दक्षिण और पूर्व की ओर एक-एक द्वार है। जिनके दोनों ओर वातायनों की पक्तियां हैं और जिस का पूर्व का दरवाजा मुख्य द्वार के रूप में प्रयुक्त होता है। इस इबादत खाने के सम्मुख भाग में चौबीस मेहराबी द्वार हैं जिनमें बीच का सबसे ऊंचा है और तुगलकी शैली में उसके दोनों तरफ छोटी-छोटी शुंडाकार मीनारें हैं (फलक 19क)। इसके प्रार्थना हाल के बीच का कक्ष एक बड़े गुम्बद द्वारा आच्छादित है जबकि छोटे गुम्बद तुगलकी वास्तुकला की विशेषता लिए बीच के मार्ग और गलियारों की छत के ऊपर उठते हैं। पीछे की तरफ अन्दर की ओर मिहराबों को पांच प्रक्षेपणों द्वारा दर्शाया गया है।

(ख) विजय-मंडल

बेगमपुरी मस्जिद के पास ही उत्तर में विजय-मंडल है, जो एक ऊंचे चबूतरे पर विशाल अष्टभुजाकार उनगढ़े पत्थरों से निर्मित एक असाधारण इमारत है तथा तुगलक शैली में जिसकी बगलें ढलवां हैं और प्रत्येक दिशा में एक दरवाजा है। इसकी छत के दक्षिण-पश्चिमी कोने में बल्लियों पर एक अस्थायी आवरण लगाया जा सकता था जबकि वहां एक खुला विशाल कक्ष भी शायद मौजूद था। इसके बिल्कुल ही निकट पूर्व की तरफ आच्छादित माठीयुक्त आवासीय भवन के अवशेष हैं जो स्पष्टतया एक हवेली के हिस्से थे।

इस भवन का उद्‌देश्य स्पष्ट नहीं है। कुछ लोग यह समझते हैं इसका जहांपनाह (पृष्ठ 73) के बुर्ज के रूप में इसका इस्तेमाल होता था जबकि ऐसा विश्वास भी किया जाता है कि सिकन्दर लोदी के शासन काल (1489-1517) के एक संत शेख हसन ताहीर द्वारा बाद में इसका अपने आवास के रूप में इसका इस्तेमाल किया गया था और यह भी कहा जाता है

कि मुहम्मदशाह तुगलक ने (1325-51) इसका इस्तेमाल अपनी फौजों का निरीक्षण करने के लिए करता था।

(ग) कालू सराय मस्जिद

कालू सराय का छोटा गांव विजय-मंडल के उत्तर पश्चिम में लगभग 500 मीटर की दूरी पर है और उस तक या तो उसी दिशा से या दिल्ली से करीब 15 किलोमीटर पर दिल्ली-मेहरोली मुख्य मार्ग सड़क से पहुंचा जा सकता है। अनगढ़े पत्थरों से निर्मित परन्तु पलस्तर की गई यह मस्जिद है। प्रारम्भ में अपने प्रार्थना हाल के अग्रभाग में इसके सात मेहराबी द्वार थे जिनमें से कुछ अब गिर गए हैं, तुगलकी शैली में निचले गुम्बदों की एक श्रृंखला द्वारा आच्छादित है। यह माना जाता है कि यह फिरोजशाह तुगलक (पृष्ठ 27) के वजीरे आजम खाने जहां जुनां शाह द्वारा निर्मित सात मस्जिदों में से एक है।

(घ) जहांपनाह

जहांपनाह दिल्ली के चौथे शहर का नाम है, जिसे मुहम्मद बिन तुगलक ने (1325-51) में किला राय पिथौरा और सीरी नाम के दिल्ली के प्रथम दो नगर थे उनके बीच उस समय बसे इलाके को घेरकर बनाया था। दिल्ली में बढ़ते हुए उपनगरों की आवश्यकताओं के कारण इस शहर की पत्थरों से निर्मित दीवारों को अब हटाकर दूर तक फैला दिया गया है। दिल्ली से लगभग 14.5 किलो मीटर पर ये दीवारें दिल्ली-मेहरोली सड़क को काटती है और इन्हें कई स्थानों पर देखा जा सकता है, जैसे भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान के उत्तर में, बेगमपुरी मस्जिद के उत्तर में और खिड़की मस्जिदों के दक्षिण में (पृष्ठ 71, 75) चिराग दिल्ली के उत्तर में (पृष्ठ 77)

सतपुल के निकट (पृष्ठ 76) तथा किला राय पिथौरा के हौजरानी द्वार के समीप।

1964-65 में थोड़े पैमाने पर की गई खुदाई के पश्चात् किला राय पिथौरा की पूर्वी दीवार के साथ उसके सन्धि स्थल के समीप जहांपनाह की दीवारों का एक हिस्सा प्रदर्शित हुआ है। इस खुदाई से निर्माण और अभिवृद्धियों के तीन अवस्थानों का पता चलता है, जिसकी बुनियादों में खुरदरे छोटे पत्थर है और जमीन से ऊपर दीवार का बाहरी हिस्सा संगीन चिनाई का है।

11. मालवीयनगर क्षेत्र

(क) शेख कबीरुद्दीन का मकबरा या लाल गुम्बद

दिल्ली-मेहरोली सड़क से दक्षिण-पूर्व की ओर निकली सड़क से मालवीय नगर पहुंचने से पहले उस सड़क के दक्षिण की ओर शेख कबिरुद्दीन औलिया का मकबरा, जो लाल गुम्बद या रकाब वाला गुम्बद के नाम से भी जाना जाता है, दिखाई देता है। यह तिरछी झुकी दीवारों सहित एक चौकोर कक्ष है जिसके सामने की ओर लाल बलुए पत्थर लगे हैं और छत पलस्तर किए गए शंक्वाकार गुम्बद से आच्छादित है और यह इस प्रकार गयासुद्दीन के मकबरे से मिलता जुलता है (पृष्ठ 101)। पूर्व की ओर एक नुकीली मेहराब के जरिए उसका प्रवेश द्वार संगमरमर की पट्टियों से अलकृत है। उसकी पश्चिमी दीवार पर लगे लोहे के वलय अथवा रकाब के बारे में यह विश्वास किया जाता है कि ये चोरों द्वारा दीवारों पर चढ़ने के लिए लगाये गए थे, जिनके बारे में यह कहा जाता है कि वे सुनहरे कलश को ले गये। इसलिए इसका नाम रकाबवाला गुम्बद पड़ा और उसी नाम से यह लोकप्रिय हो गया।

यह माना जाता है कि, इस मकबरे को लगभग सन् 1397 में बनवाया गया था। शेख कबीरुद्दीन औलिया, जिन्हें यहां दफन किया गया है, शेख रोशन चिरागे-दिल्ली के शिष्य थे, जिनके मकबरे का जिक्र अत्यन्त किया गया है (पृष्ठ 76)।

(ख) शेख अलाउद्दीन का मकबरा

सड़क से पास ही मालवीयनगर और चिराग दिल्ली के बीच प्रसिद्ध फकीर शेख फरीदुद्दीन शक्करगंज के वंशज शेख अलाउद्दीन का चौकोर गुम्बदयुक्त मकबरा है। उनकी मृत्यु सन् 1541-42 में हुई, यद्यपि उन्होंने अपना मकबरा पहले ही 913 हिजरी (सन् 1507) में बनवा लिया था, जैसाकि उसके दरवाजे पर लगे एक अभिलेख से मालूम होता है।

इस मकबरे का कक्ष बारह खंभों पर टिका हुआ है। बाहर की ओर उनके बीच की खुली जगह को छेदवाले पत्थरों की जाली से बन्द कर दिया है। इसकी गुम्बद सोलह किनारों वाले ढोल से उठती है। मेहराबों के चाप-स्कंधों पर उत्कीर्ण किए गए और रंगीन पलस्तर के गोलाकार फलकों सहित तथा मुंडेरों पर कमूरों के डिजाइन एक समान ही हैं और गुम्बद की अन्दरुनी छत पर लेखों की पट्टियां लगाकर इस मकबरे को पर्याप्त रूप से अलंकृत किया गया है।

(ग) शेख यूसुफ कत्ताल का मकबरा

मालवीय नगर के पूर्वी परिसर के साथ की एक सड़क उसके दक्षिण में खिड़की गांव को जाती है। इस गांव के उत्तर-पश्चिम में लगभग 300 मीटर पर एक छोटा परन्तु आकर्षक शेख यूसुफ कत्ताल का मकबरा है, जो लाहौर के काजी जलालुद्दीन का शिष्य थे। वे लगभग सन् 1527 में मरे थे, जिसके बाद उनका यह मकबरा बनवाया गया। जैसाकि ऊपर बताया गया

शेख अलाउद्दीन के मकबरे के समान यह मकबरा भी बारह स्तम्भों पर टिका हुआ है और इसके अन्य ब्यौरे एक समान हैं। इसके निकट एक मस्जिद और कई कब्रों के अवशेष हैं।

(घ) खिड़की मस्जिद

यह मस्जिद गांव खिड़की के दक्षिणी सिरे में स्थित है। अनगढ़ पत्थरों से निर्मित और मोटी पलस्तर चढ़ी यह एक दुमंजिली मस्जिद है जिसकी निचली मंजिल के तहखाने में कोठरियों की एक शृंखला है। इसके चारों कोनों में तिरछे झुकाव वाले बुर्ज हैं जिससे यह किलेबन्द इमारत जैसी दिखाई देती है। सिवाय पश्चिम के इसकी तीनों दिशाओं में एक-एक बड़ा दरवाजा बाहर की ओर निकला दिखाई देता है जिनमें से प्रत्येक की बगल में शुण्डाकार पतली मीनारें है तथा मुख्य प्रवेश द्वार पूर्व की ओर से है (फलक 15)। निचली मंजिल पर कोठरियों के द्वारों से मिलती जुलती ऊपर की मंजिल में छेददार जालियों से बन्द खिड़कियां हैं, जिससे उसको यह वर्तमान (खिड़की मस्जिद) नाम मिला है। खम्भों वाला आंगन पचीस वर्गों में विभक्त है जिनमें से प्रत्येक दिशा मे पांच-पांच वर्ग है और प्रत्येक वर्ग मे नौ नौ छोटे वर्ग है। बड़े वर्गों में तीन-तीन वर्ग प्रत्येक दिशा में है जिनमें से दो-दो कोनों पर और एक बीच में है और आंगन के बीच वाले वर्ग के साथ प्रत्येक नौ-नौ छोटे-छोटे गुम्बदों के झुंडों से तुगलक शैली में आच्छादित है। शेष चौकों मे रोशनी आने देने के लिए चार चौक, जो तिरछी ओर है, खुले छोड़े गए हैं। जबकि अन्य वर्गों को चपटी छतों से ढका गया है। आंगन को इस सीधे-सादे ढंग से ढकने के तरीके को उसी निर्माता (पृष्ठ 115) द्वारा निर्मित केवल अन्य एक मस्जिद में दोहराया गया है। उत्तरी भारत में बन्द मस्जिद के केवल ये ही दो उदाहरण हैं।

इस मस्जिद को फिरोजशाह तुगलक (1351-88) के वजीरे-आजम खाने-जहां-जुनांशाह ने बनवाया था और यह विश्वास किया जाता है कि यह उसके द्वारा निर्मित सात मस्जिदों में से एक है।

(ड) सतपुल

खिड़की मस्जिद के लगभग 800 मीटर पूर्व में स्थित और जहांपनाह के नगर की दीवार के एक हिस्से के रूप में (पृष्ठ 72) सतपुला एक छोटा बांध है जिसे मुहम्मद शाह तुगलक (1325-51) ने सिचाई के प्रयोजनार्थ रुके हुए पानी को नियंत्रित करने के लिए बनवाया था।

यह एक ग्यारह द्वारों सहित एक अभूतपूर्व इमारत है जिसके प्रत्येक कोने पर दो-दो द्वार, जो एक दूसरे के पूरक तथा गौण किस्म किस्म के हैं और शेष दरवाजे हैं जिनका वर्तमान नाम अर्थात् सात पुल, था, "सात द्वारों वाला पुल" लिए हुए हैं इन द्वारों के बगलों में शटरों को सरकाने के लिए खांचे बनाए गए हैं। प्रत्येक छोर पर एक मीनार है जिसके भीतर एक अष्टभुजाकार कक्ष है, जो किसी समय मदरसे के रूप में इस्तेमाल होता था, जिससे इस स्मारक को मदरसे का वैकल्पिक नाम मिला है।

12. चिराग दिल्ली

(क) चिरागे दिल्ली की दरगाह

मालवीयनगर-कालका जी सड़क पर स्थित चिराग दिल्ली गांव नसीरुद्दीन महमूद के मकबरे के आसपास तक धीरे-धीरे बस गया है। यह नसीरुद्दीन महमूद, जिन्हें रोशन चिरागे-दिल्ली उपनाम दिया गया था, हजरत निज़ामुद्दीन के शिष्य थे और चिश्ती सम्प्रदाय के मुखिया के रूप में उनके उत्तराधिकारी भी बने। उनकी मृत्यु सन् 1356 में हुई। पहले यह गांव प्रत्येक दिशा में एक प्रवेश द्वार सहित एक बड़े अनगढ़े पत्थरों से निर्मित आयताकार अहाते के भीतर था। जिसे मुहम्मद बिन तुगलक (1325-51) ने बनवाया था।

यह मकबरा एक बारह स्तम्भों वाला चौकोर कक्ष है जो अन्दर से छेददार जालियों से घिरा हुआ है और यह चारों कोनों पर छोटे गुम्बदनुमा बुर्जियों सहित एक अष्टभुजाकार ढोल से उठे हुए एक पलस्तर वाले गुम्बद से आच्छादित है। इसका पुनर्नवीकरण करके अलंकृत किया गया है और समय-समय पर यहां अनेक हाल बनाए गए हैं-जैसे मजलिस खाना, महफिल खाना, और अनेक मस्जिदों में से एक मीनार जिसे बादशाह फर्रुखसियर (1713-19) ने बनवाया था। इस दरगाह के अहाते के भीतर अनेक मकबरे और कब्रें हैं।

(ख) बहलोल लोदी का मकबरा

लोदी वंश के संस्थापक बहलोल लोदी (1451-88) का मकबरा, एक चौकोर कक्ष प्रत्येक दिशा में तीन मेहराबी द्वारों सहित और पांच गुम्बदों द्वारा आच्छादित है जिनमें बीच की गुम्बद अन्यों की तुलना में बड़ी है। मेहराब कुरान संबंधी लेखों और चाप स्कंध गोलाकार फलकों से सुसज्जित किए गए हैं। दिल्ली के बहुत से अन्य शासकों के मकबरों से तुलना करने पर यह एक सीधी-सादी इमारत लगती है।

13. मोठ-मस्जिद

मोठ-मस्जिद या मोठ की मस्जिद इसी नाम के गांव में स्थित है। इस तक या तो यूसुफ सराय के पास दिल्ली-मेहरोली सड़क से या नई दिल्ली के साऊथ एक्सटेंशन II के नाम से पुकारी जाने वाली कॉलोनी के जरिए रिंग रोड से पहुंचा जा सकता है। इसे सिकन्दर लोदी (1488-1517) के एक वजीर मियां भुवा ने बनवाया था। उसने इब्राहीम लोदी (1517-26) की भी सेवा की थी और इसे उसने उसके नाराज हो जाने तथा उसके द्वारा मारे जाने से पहले बनवा दिया था।

यह मस्जिद पूर्व की ओर लाल बलुआ पत्थर के एक भव्य फाटक सहित दीवारों से घिरे एक ऊंचे उठे हुए चबूतरे पर बनी है। उसका प्रार्थना कक्ष, जिस पर भूरे रंग के समतल पत्थर की परत चढ़ी हुई है जिसमें पांच मेहराबी द्वार है जिसमें से बीच का द्वार लाल बलुआ पत्थर का बना हुआ है और मेहराब के ऊपर एक छोटी खिड़की सहित संगमरमर से अलंकृत है। प्रार्थना कक्ष के बीच की मिहराब को नस्ख स्वरूपों में कुरान संबंधी लेखों से तथा अन्त के कमरों की अन्दरुनी छतों को उत्कीर्ण पलस्तर से अलंकृत किया गया है। छत को तीन गुम्बदों से सजाया गया है, जो बीच और अन्त के कक्षों से ऊपर उठे हुए हैं। पीछे के कोनो में खुले द्वारों (फलक 19 ख) सहित दुमंजिले बुर्ज है और उनसे मेल खाने के लिए अहाते की दीवार के पूर्वी कोनों पर गुम्बदयुक्त अष्टभुजाकार छतरियां बनाई गई हैं। इस इमारत की अन्य विशेषताएं, जो ध्यान खींचती हैं, वे गुम्बद के टिकाव के लिए आरोही निक्षेप युक्त लटकनें तथा रंगीन टाइल का कार्य है जिनके केवल अब अवशेष ही मौजूद हैं।

जमाली-कमाली मस्जिद (पृष्ठ 65) से पहले निर्मित इस मस्जिद का मुगलकालीन मस्जिद निर्माण के विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान है (पृष्ठ 32)। मिहराब और आर्च के अलंकरण, केन्द्रीय मेहराब और प्रार्थना कक्ष के ऊपर तीन गुम्बदों के निर्माण का विशेष प्रस्तुतीकरण कुछ इसकी ऐसी विशेषताएं है, जो मुगलकाल की मस्जिदों में पाई ही जाती है, जबकि इसकी अन्य विशेषताएं भी हैं जो जमाली-कमाली मस्जिद और शेरशाह की मस्जिद (पृष्ठ 123) से मिलती जुलती है।

यह कहा जाता है कि सिकन्दर ने एक बार एक मस्जिद से एक मोठ (एक किस्म का मूंग) का दाना उठा लिया और अपने वज़ीर मियां भुवा को सौंप दिया, जिसने उसे बो दिया और इस दाने से कई गुना दाने बन गए और उसकी आमद को बार-बार बोया गया। जब तक कि इस मस्जिद के बनाने के लिए पर्याप्त धन अर्जित न कर लिया गया। अन्त में उसकी आमदनी से बनी मस्जिद को यह वर्तमान नाम दिया गया है।

14. हौजखास

ग्रीन पार्क के दक्षिण में दिल्ली-मेहरोली रोड जिस रोड़ को अब श्री अरबिन्दो मार्ग का नाम दिया गया है, से उसकी शाखा के रूप में एक सड़क हौजखास पर खत्म होती है। अलाउद्दीन खलजी (1296-1316) ने सीरी के निवासियों के इस्तेमाल के लिए यहां एक बड़ा तालाब खुदवाया था। सीरी दिल्ली का दूसरा नगर है, जिसको उसने स्थापित किया था (पृष्ठ 82)। उस समय यह हौजे-अलाई के नाम से जाना जाता था। फिरोजशाह तुगलक (1351-88) ने इसे फिर से साफ करवाया और उसकी मरम्मत करवाई और उसके दक्षिणी और पूर्वी किनारों पर अनेक इमारतें बनवायीं जो अब हौजखास कहलाती हैं और आंशिक तौर पर आधुनिक दीवारों से घिरी हुई है।

ऊंची परन्तु थोड़ी तिरछी दीवारों तथा एक ऊंचे गुम्बद सहित अनगढ़ पत्थरों से निर्मित और पलस्तर किया गया है, चौकोर कक्ष फिरोजशाह का मकबरा है जो इन इमारतों में सबसे प्रमुख है। उसकी बाहरी आडम्बरहीन आकृति की नीरसता लाल बलुआ पत्थर और संगमरमर के फीतेदार रद्दों और नक्काशीयुक्त कंगूरों से खत्म हो जाती है। दक्षिण की ओर से एक दरवाजे के जरिये इस मकबरे में प्रवेश किया जाता है। इसके बाहर की ओर प्रांगण पत्थर की वेदिकाओं से घिरा हुआ है। गुम्बद के बीच की कमानी तथा अन्दरूनी छत और बगली डाट और लटकनों को पलस्तर के काम से अलंकृत किया गया है, जिसमें नस्ख में उत्कीर्ण कुरान संबंधी लेख और चित्रकारी शामिल है। दक्षिणी द्वार पर अंकित लेख को सिकन्दर लोदी के शासन काल में, उस समय जब कि उसने इस मकबरे की कुछ मरम्मत करवाई थी, 913 हिजरी (सन् 1507) में उत्कीर्ण किया गया था। एक सरदल से युक्त द्वार और इसके बाहर पत्थर की वेदिकाएं प्राचीन भारतीय निर्माण की विशेषताएं हैं जिन्हें इस्लामी वास्तुकला की विशेषताओं के साथ सुन्दर ढंग से मिश्रित किया गया है। इस कक्ष के भीतर चार कब्रों में से बीच

की एक के बारे में यह माना जाता है कि वह फिरोजशाह की है और अन्य दो उसके पुत्र और पौत्र की है।

इस मकबरे से सटे हुए इसके पश्चिम और उत्तर में तालाब के किनारे हालों और कक्षों की एक दुमंजिली शृंखला है जिन्हें फिरोजशाह ने लगभग 1352 में धार्मिक प्रशिक्षण के लिए एक मदरसे या कॉलेज के रूप में बनवाया था (फलक 14 ख)। उनके उत्तरी छोर पर एक मस्जिद है। ये इमारतें 'एल' आकार की एक योजना के आधार पर खड़ी की गई है। अपनी जालीदार खिड़कियों, गोलाकार गचकारी के फलकों, कमल के अभिप्रायों, अन्दरूनी छतों पर चित्रकारी, छज्जोंयुक्त खिड़कियां और संभवतः किताबें रखने के लिए गहरे ताकों सहित ये खंड अपने वर्ग में एक अभूतपूर्व इमारत समूह के रूप में स्पष्टतः दिखाई देते हैं। दक्षिण-पश्चिमी कोने में दिखाई देने वाली स्वतंत्र इमारत संभवतः प्राचार्य के निवास स्थान का काम देती रही होगी।

इस क्षेत्र में पुराने प्रवेश द्वारों में से एक पश्चिम में है जो अब बन्द कर दिया गया है। इस मदरसे की ऊपरी मंजिलों से तालाब की ओर नीचे जाने वाली अनेक सीढ़ियाँ हैं। इस क्षेत्र में चारों तरफ फैले हुए जिसमें तालाब के आसपास का क्षेत्र भी शामिल है, अलग-अलग आकारों के मकबरे हैं परन्तु इनमें जो व्यक्ति दफन किए गए हैं, वे अज्ञात हैं, हालांकि इनमें कुछ इस मदरसे के उस्ताद हो सकते हैं।

महमूद तुगलक को सन् 1398 में हराने के बाद तैमूर लंग ने इस तालाब पर डेरा डाला और उसका इतिहासकार शरफुद्दीन याजदी इसके बड़े आकार से बहुत प्रभावित हुआ। परन्तु उसने गलती से इस तालाब को फिरोजशाह तुगलक द्वारा निर्मित बतलाया है।

15. ग्रीन पार्क क्षेत्र

(क) बागे-आलम का गुम्बद

हौजखास की ओर जाने वाली सड़क पर हौजखास और ग्रीन पार्क के बीच में उत्तर की ओर स्थित यह एक भूरे रंग के चौका पत्थरों से निर्मित

एक चौकोर इमारत है (फलक 16 क) और इसके अग्रभाग पर तीन मंजिलों का आभास देने वाली चौकोर लोदी मकबरों के निर्माण की शैली को अपनाया गया है (पृष्ठ 29) इसके पूर्व, उत्तर और दक्षिण में मेहराबी द्वार हैं। जिनमें दक्षिणी द्वार मुख्य द्वार के रूप में है और पश्चिमी किनारे दिशा पर अन्दर की ओर एक मिहराब है। इसकी अन्दर की छत में चित्रित किया गया उत्कीर्ण पलस्तर है। इसकी पश्चिमी दीवार पर अंकित एक लेख के अनुसार इसका निर्माण संभवतः एक फकीर मियां शेख शिहाबुद्दीन ताजखान की कब्र पर एक सुल्तान अबू सईद द्वारा सिकन्दर लोदी के शासन काल में 906 हिजरी (सन् 1501) में करवाया गया था।

(ख) दादी-पोती और अन्य मकबरे

दिल्ली-मेहरोली सड़क से उसके चौराहे से हौजखास की ओर जाते समय एक ऊंचे मैदान पर उत्तर की ओर दो मकबरे दिखाई पड़ते हैं, जिनमें से एक बड़ा है और दूसरा छोटा। अनगढ़ पत्थरों से निर्मित और पलस्तर किए गए इन मकबरों में, जिनके पूर्व, उत्तर और दक्षिण में द्वार है और जिनके अग्रभाग "मंजिलों" के आकार के सदृश हैं, लोदी काल के चौकोर मकबरों के नमूनों को अपनाया गया है। यह नहीं पता कि उनमें कौन कौन दफन है, परन्तु बड़ा मकबरा बीबी (मालकिन) के मकबरे या दादी के मकबरे के नाम से विख्यात है और छोटा बाँदी (नौकरानी) या पोती के मकबरे के नाम से विख्यात है।

मध्यकाल का एक संस्कृत में अंकित अभिलेख, जो बहुत ज्यादा मिट गया है, यहां कुछ वर्ष पूर्व मिला था और हो सकता है कि यह स्थल किसी हिन्दू प्रतिष्ठान का प्रतिनिधित्व करता हो।

ग्रीन-पार्क के भीतर और उसके आसपास विभिन्न आकार के अनेक मकबरे हैं जिनके लोकप्रिय नाम हैं- जैसे बीरां की गुम्बद (भाई का गुम्बद),

छोटी गुमटी, सकरी गुमटी आदि। परन्तु इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता कि इनमें किन-किन को दफन किया गया है।

16. हौज खास एन्कक्ले

(क) सीरी

हौजखास एन्कक्लेव के दक्षिणी छोर से दिल्ली से लगभग 13 किलोमीटर पर या पंचशील सड़क से एक सड़क दिल्ली के दूसरे नगर सीरी को जाती है जिसका निर्माण लगभग सन् 1303 में अलाउद्दीन खलजी ने करवाया था। सीरी के पूर्वी भाग को काटती हुई एक चौड़ी सड़क आर-पार जाती है जो मूलचन्द अस्पताल और चिराग दिल्ली को जोड़ती है। इसकी ऊंची अनगढ़े पत्थरों से निर्मित शहरी दीवार मोटे तौर पर तल-योजना में अण्डाकार है। कुछ बुर्जों, तीरों के लिए रन्ध्रों और लपट के आकार की प्राचीरों के के कंगूरों के अवशेष सहित जो यहां पहली बार प्रचलन में आए हुए दिखाई पड़ते हैं। सीरी की प्राचीर अधिकांशत: फैलाव में बची है जो पश्चिम और दक्षिण की ओर अधिक बची है। इस नगर की दीवार के अन्य भागों की सीध केवल मिट्टी और मलबे के निशान के रूप में दिखाई देती है। यह कहा जाता है कि इसके सात दरवाजे थे, जिनमें से दक्षिण-पूर्व की ओर का दरवाजा अब भी देखा जा सकता है।

महलों के कोई अवशेष यहां नजर नहीं आते। परन्तु इसके भीतर पश्चिम की ओर शाहपुरजट गांव में कुछ परिव्यक्त इमारतें हैं। इस शहर के भीतर या बाहर की ओर कुछ मस्जिदों और गुम्बदों के अवशेष हैं, जिनमें से खलजी काल में तोहफे वाला गुम्बद के नाम से प्रसिद्ध मस्जिद अपने गुम्बद युक्त बीच के कक्ष के साथ केवल बाकी बची है तथा लोदी समय की मुहम्मद वाली और मखदूम साहब की मस्जिद ये दोनों मस्जिदें प्रसिद्ध हैं।

(ख) नीली मस्जिद

हौजखास एन्कक्लेव के भीतर इस अनगढ़ पत्थरों से निर्मित, परन्तु पलस्तर की गई मस्जिद का केवल प्रार्थना कक्ष बाकी बचा है। जिसमें तीन मेहराबयुक्त द्वार हैं और मध्य भाग के ऊपर एक अकेला गुम्बद है। छज्जे से ऊपर उसका अग्रभाग नीले टाइलों से अलंकृत किया गया है जिससे उसका वर्तमान यह नाम रख दिया गया है अर्थात् "नीली मस्जिद"। उसके बीच के मेहराबी द्वार के ऊपर एक अभिलेख है जिससे हमें यह जानकारी मिलती है कि उस समय के दिल्ली के सूबेदार खाने आजम मसनद अली खवास खां के बेटे फतहखान की धाय कुसुम्भिल ने इसे सिकन्दर लोदी (1489-1517) के शासन काल में 911 हिजरी (सन् 1505-06) में बनवाया था।

(ग) ईदगाह

नीली मस्जिद से दक्षिण की ओर पास ही एक ईदगाह के अवशेष हैं जिसके पश्चिम की ओर अनगढ़े पत्थरों की कंगूरेदार दीवार है तथा जिसकी ग्यारह मिहराबों की एक शृंखला है और जो मूल रूप में दक्षिणी और उत्तरी छोरों पर एक-एक गोलाकार बुर्ज में समाप्त हो रही है परन्तु अब उत्तरी बुर्ज खंडित हो चुका है। पीछे की ओर तीन प्रक्षेपण हैं जो अन्दर की ओर इन मिहराबों की स्थिति को लक्षित करते हैं।

इसके दक्षिणी बुर्ज पर अंकित शिलालेख इकबाल खां की प्रशंसा करता है, जो एक शक्तिशाली उमराव मल्लूखां के नाम से प्रसिद्ध था और महमूद तुगलक के शासन काल में वास्तविक शासक था। यह बताया जाता है कि इस मस्जिद को उसने तैमूर द्वारा तबाही मचाये जाने के बाद 807 हिजरी (1404-05) में बनवाया था।

(घ) चोर मीनार

ईदगाह के दक्षिण-पूर्व में लगभग 200 मीटर पर अनगढ़े पत्थरों से निर्मित एक शुण्डाकार बुर्ज है जो चोर मीनार कहलाता है, यह एक चबूतरे पर स्थित है और इसके अन्दर की ओर एक जीना है। संभवतः इसे खलजी काल में बनवाया गया था।

इसके बाहर की ओर अनेक गोलाकार सुराख है, जिनके इस्तेमाल किए जाने के बारे में कुछ भी मालूम नहीं है। यह विश्वास किया जाता है कि जो चोर पकड़े जाते थे उनके सिर कलम कर दिए जाते थे और इन सुराखों में रख दिए जाते थे ताकि दूसरे लोगों को चोरी करने से भय दिखाकर रोका जा सके जिसके कारण इसका यह नाम पड़ा था।

17. दरिया खां का मकबरा

दिल्ली मेहरोली सड़क से या रिंग रोड़ से पहुंचने पर किदवई नगर में बाजार के समीप एक विशाल मकबरे के खंडहर पड़ते है। जिनके बारे मे यह विश्वास किया जाता है कि ये दरिया खां लोहानी का मकबरा है, जिसने अनेक उच्च पदों पर सभी लोदी बादशाहों की सेवा की थी।

बीच में वास्तविक मकबरे और कोनों पर गुम्बदयुक्त छतरियों सहित जो सब का सब एक विस्तृत त्रिस्तरीय चबूतरे पर बना है, एक अभूतपूर्व निर्माण कार्य है। सबसे निचले स्तर पर कोनों मे छतरियों के निशान है और पूर्व की ओर सामने की तरफ प्रवेश द्वार और स्तम्भ श्रेणियों युक्त कक्ष है जिससे पर्याप्त रुप से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रारंभ में यह संपूर्ण भवन समूह एक भव्य और शानदार दृश्य अवश्य प्रस्तुत करता होगा। स्पष्ट है कि यह मकबरा एक पुरानी इमारत के स्थल पर रहा होगा जिसके कुछ भाग हाल ही की खुदाई में प्रकट हुए थे।

18. नई दिल्ली साउथ एक्सटेन्शन ।

इस कालोनी में चार उल्लेखनीय मकबरें हैं, सबके सब चौकोर नमूने के और संभवतः लोदी काल में निर्मित किए गए हैं। ये पूर्व, उत्तर और दक्षिण में मेहराबी दरवाजों सहित एक गुम्बद से आच्छादित हैं, परन्तु इनका मुख्य प्रवेश द्वार दक्षिण में है और उनके अन्दर की ओर की पश्चिमी दीवार में मिहराब दी गई हैं। रिंग रोड़ से लगभग 300 मीटर उत्तर में काले खां का गुम्बद है जिसकी अन्दरुनी छत रंगीन पलस्तर के काम से चित्रित की गई है। इसकी पश्चिमी दीवार में मिहराब पर एक लेख है जिससे हमें यह पता चलता है कि इसे मुबारक खां के अवशेषों को दफनाने के लिए बहलोल लोदी के शासन काल में 886 हिजरी (सन् 1481) में बनवाया गया था। बहलोल लोदी के दरबार में दो उमराव इस नाम के थे परन्तु यहां जो एक दफन है वह दरिया खां का पिता हो सकता है जिसका उपर्युल्लिखत मकबरा ज्यादा दूर नहीं है। यह लोदी काल का प्राचीनतम ज्ञात तिथि वाला चौकोर मकबरा है और नई दिल्ली के साउथ एक्सटेंशन में केवल एक ही है, जहां हमें दफन किए व्यक्ति का पता चलता है।

इसी कालोनी के उत्तरी छोर पर तीन मकबरे है जो सामूहिक रुप से तीन बुर्ज के नाम से विख्यात हैं। काले खां के गुम्बद के उत्तर में लगभग 75 मीटर पर तथाकथित भूरे खां का गुम्बद है। इससे आगे इसके उत्तर में थोड़ी दूर पर कुछ बड़ा छोटे खां का गुम्बद हैं। इसके पश्चिम में सबसे बड़ा स्मारक बड़े खां का गुम्बद हैं, जो बाहर की ओर 22 वर्ग मीटर में है। इसकी छत के चार कोनों पर गुम्बदयुक्त छतरियां है और इसके गुम्बद के नीचे की कमानी पर उत्कीर्णनों और रंगीन पलस्तर के फीतों से चित्रण किया गया है जो बीच में एक आलंकारिक गोलाकार फलक में मिलते हैं।

19. मुबारक शाह का मकबरा

मुबारक शाह का मकबरा कोटला मुबारकपुर में है। प्रारम्भ में यह दक्षिण और पश्चिम की ओर दो फाटकों सहित एक अष्टभुजाकार अहाते से घिरा हुआ था। परन्तु इसकी दीवारें और उत्तरी फाटक खत्म हो गए हैं, केवल दक्षिणी फाटक और पश्चिम की ओर मस्जिद रह गई है।

इसके अष्टभुजाकार कक्ष का मुख्य प्रवेश द्वार दक्षिण की ओर में है तथा पश्चिम की ओर के सिवाय जिसमें एक मिहराब है, अन्य दिशाओं में मेहराबदार द्वार है। यह प्रत्येक दिशा में दरवाजों सहित एक बरामदे से घिरा हुआ है। इसके कोने ढलवां पुश्तों से सुदृढ़ किए गए हैं। इसका चौड़ा निचला गुम्बद कंगूरों से युक्त सोलह किनारों वाले परकोटे युक्त ढोल के ऊपर से उठता हुआ निर्मित है और प्रत्येक कोने पर एक-एक छोटा बुर्ज है और एक लालटेननुमा छोटा बुर्ज इसके ऊपर है। प्रत्येक दिशा के बीच में छत के ऊपर एक छतरी है। इस गुम्बद की अन्दरूनी छत उकेरियों और पलस्तर के रंगीन पट्टों से अलंकृत है। जिसके गुम्बद की कमानी पर कुरान संबंधी लेखों की एक तिहरी पट्टी है।

सैयद वंश के दूसरे शासक मुबारक शाह सैयद का देहान्त सन् 1434 में हुआ तथा मकबरे का उसी समय निर्माण हुआ होगा। जमीन पर अपने चौड़े अनुपात, निचले गुम्बद, पुश्तों और छतरियों सहित यह मकबरा कुछ-कुछ अविकसित सा दिखाई देता है परन्तु यह सैयदों के अष्टभुजाकार मकबरों की एक बढ़िया मिसाल है जिसकी लोकप्रियता लोदी और यहां तक कि मुगल काल (पृष्ठ 40, 59) में कायम रही।

20. रामकृष्णपुरम् क्षेत्र

रामकृष्णपुरम् की आधुनिक कॉलोनी के आसपास मुनीरका, मुहम्मदपुर, बसंतनगर और कुसुमपुर गांव है। इस क्षेत्र में अनेक मकबरे, मस्जिदें, मंडप

फलक - 1



हुमायूं का मकबरा, पृष्ठ 105 देखें

फलक - 2



लाल किला, दीवाने ख़ास : अन्दरूनी भाग तथा पीछे मोती मस्जिद, पृष्ठ 152 तथा 153 देखें



सफदरजंग का मकबरा, पृष्ठ 84 देखें

फलक - 4



जन्तर मन्तर : सम्राट यंत्र, पीछे जयप्रकाश तथा राम यंत्र के साथ, पृष्ठ ९५ देखें



(क) सुल्तान ग़ारी के मकबरे से प्राप्त चित्रवल्लरी, पृष्ठ 11 और 67 देखें



(ख) कुतुब क्षेत्र से प्राप्त विष्णु, पृष्ठ 14 देखें

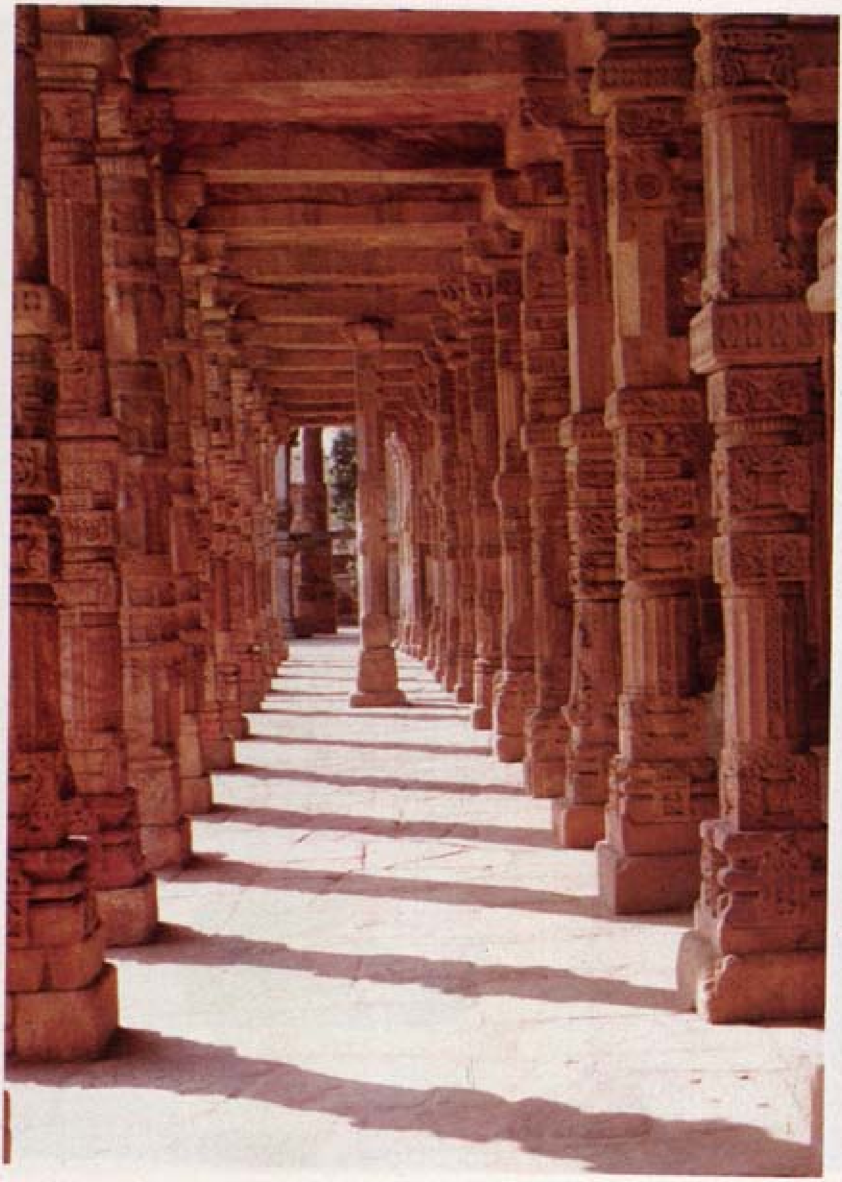
फलक - 6



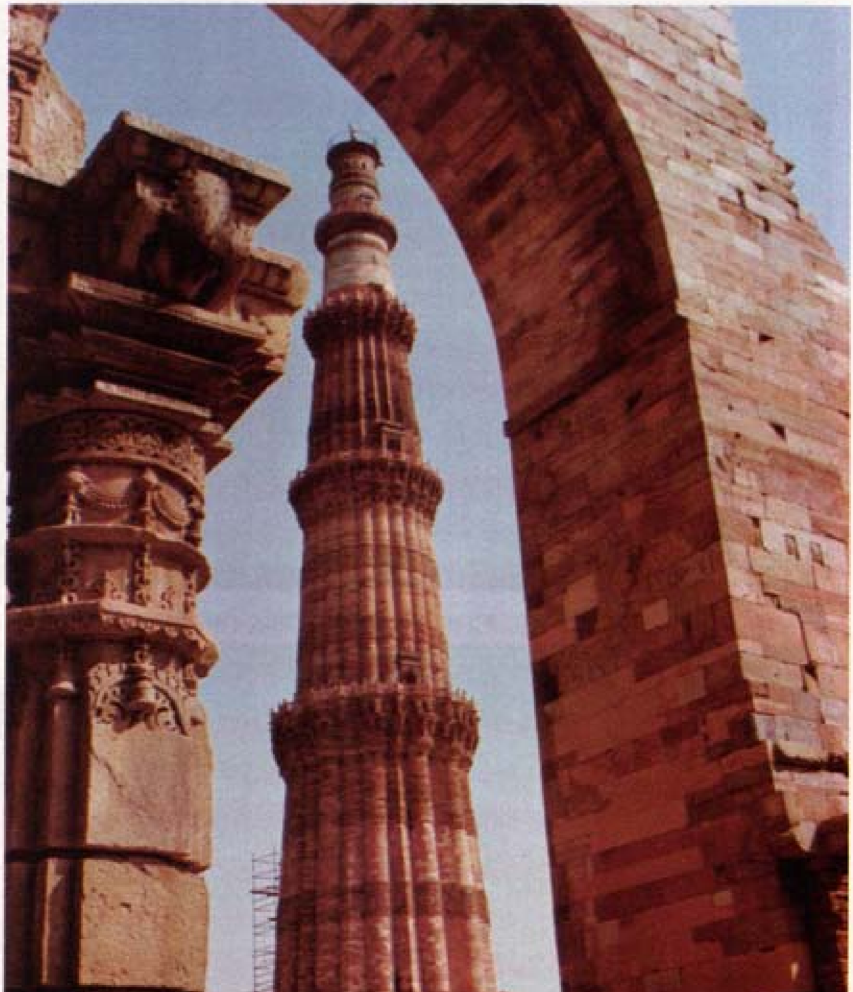
सूरजकुंड, पृष्ठ 98 देखें



कुव्वतुल-इस्लाम मस्जिद : प्रार्थना कक्ष की प्रस्तर यवनिका लौह स्तम्भ सहित, पृष्ठ 51 देखें



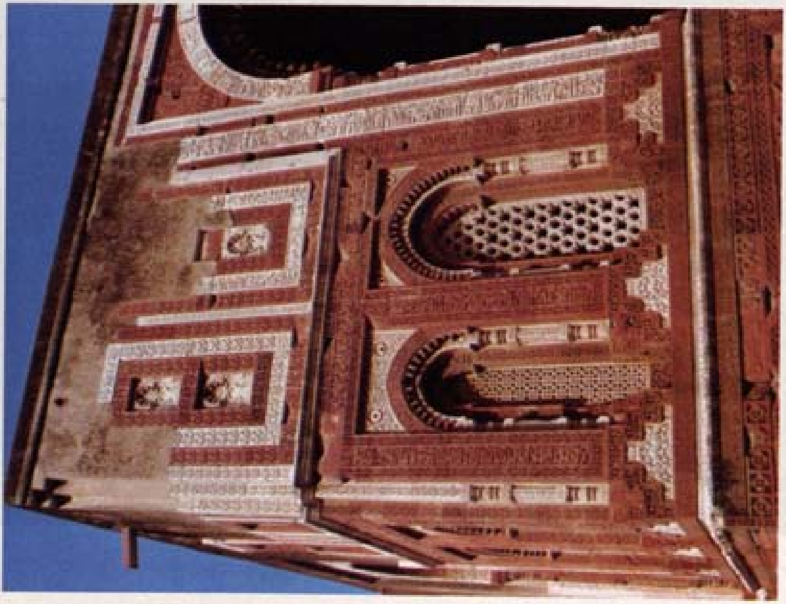
कुव्वतुल इस्लाम मस्जिद : मंदिर की स्तंभावली, पृष्ठ 51 देखें



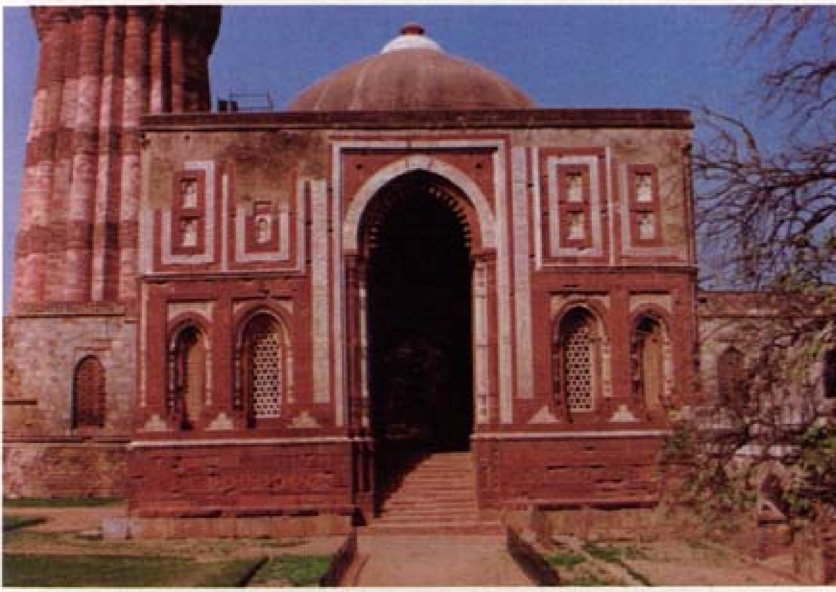
कुतुब मीनार, पृष्ठ 53 देखें



(क) कुतुब मीनार : निक्षेप तथा अन्य अलंकरण, पृष्ठ 54 देखें



(ख) अलाई दरवाजा : अलंकृत अग्रभाग, पृष्ठ 58 देखें



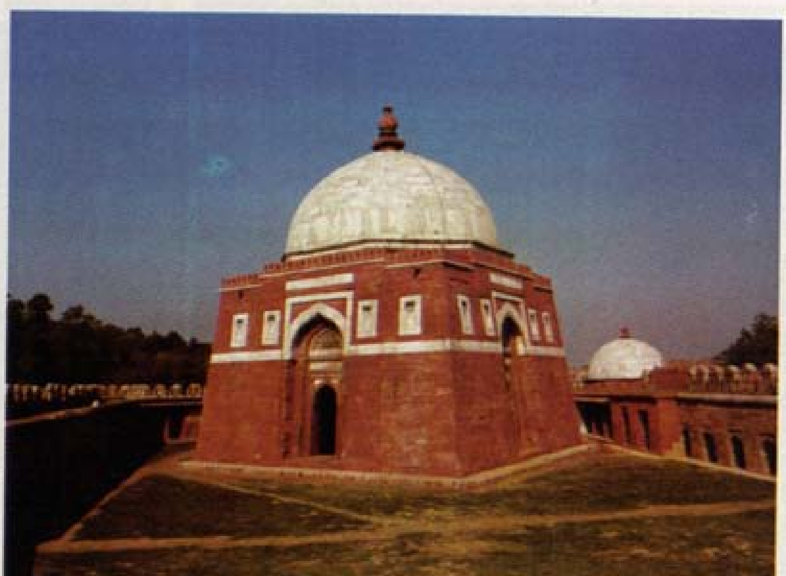
(क) अलाई दरवाजा : प्रवेश द्वार, पृष्ठ 57 देखें



(ख) ईसा खां का मकबरा, पृष्ठ 109 देखें



(क) तुगलकाबाद : परकोटे तथा बुर्ज, पृष्ठ 101 देखें



(ख) तुगलकाबाद : गयासुद्दीन का मकबरा, पृष्ठ 102 देखें

फलक - 13



सुल्तान ग़ारी का मकबरा : दफन करने का कक्ष तथा पीछे मंदिर स्तम्भों से बना बरामदा, पृष्ठ 63 देखें



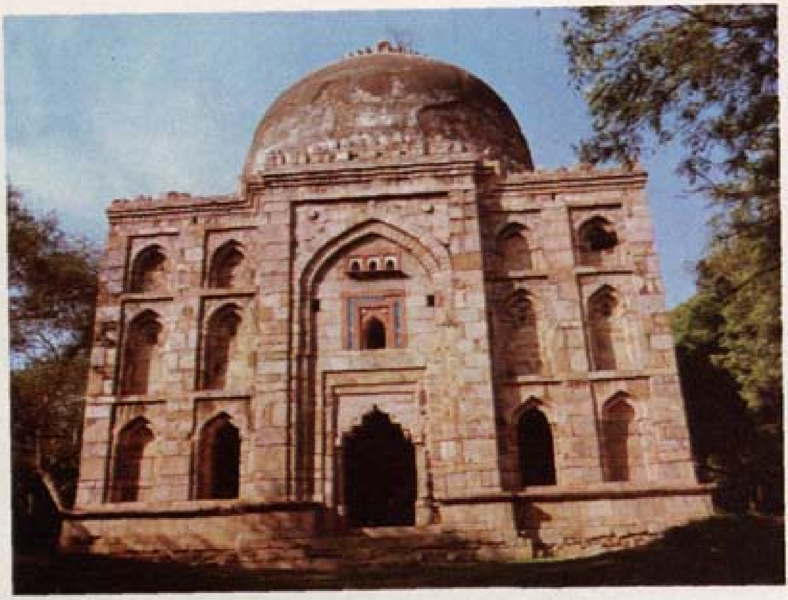
(क) कोटला फिरोजशाह : अशोक स्तम्भ के साथ पिरामिडीय निर्माण, पृष्ठ 129 देखें



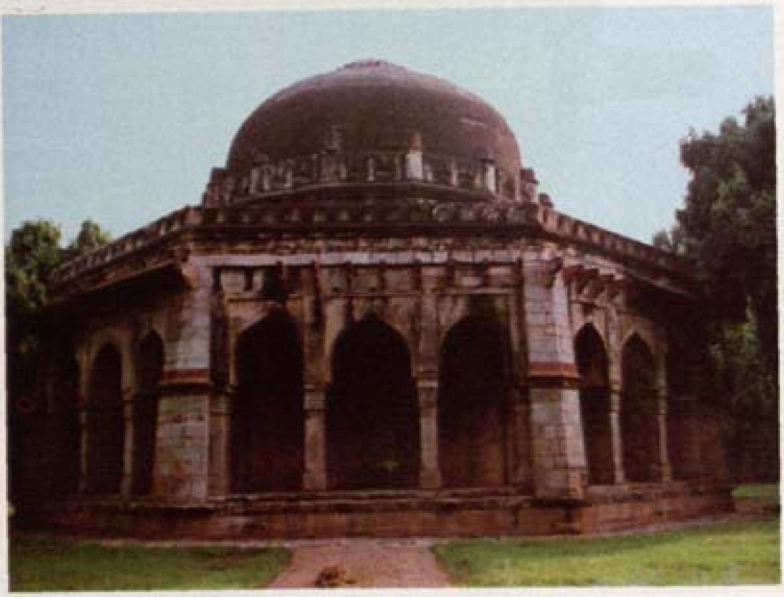
(ख) हौज खास : मदरसा का दो मंजिला स्तंभावली युक्त बरामदा, पृष्ठ 80 देखें



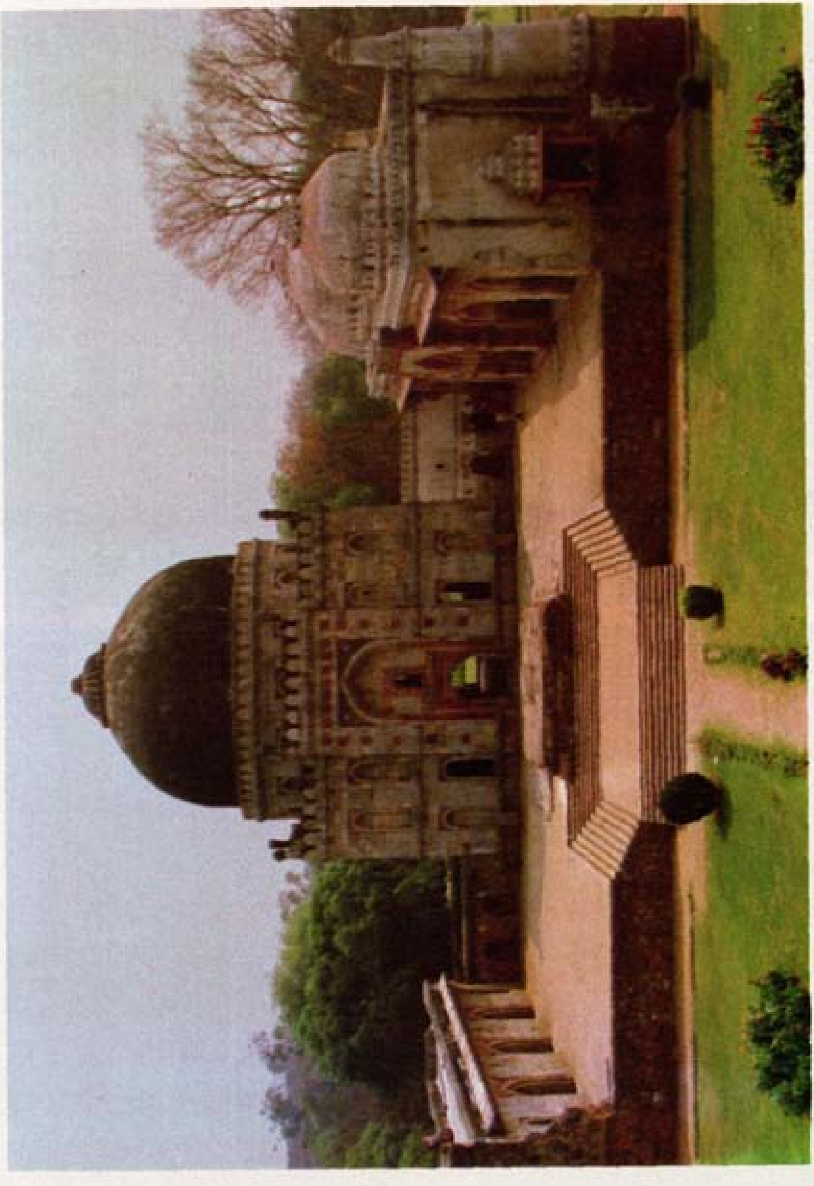
खिड़की मस्जिद : प्रवेश द्वार, पृष्ठ 75 देखें



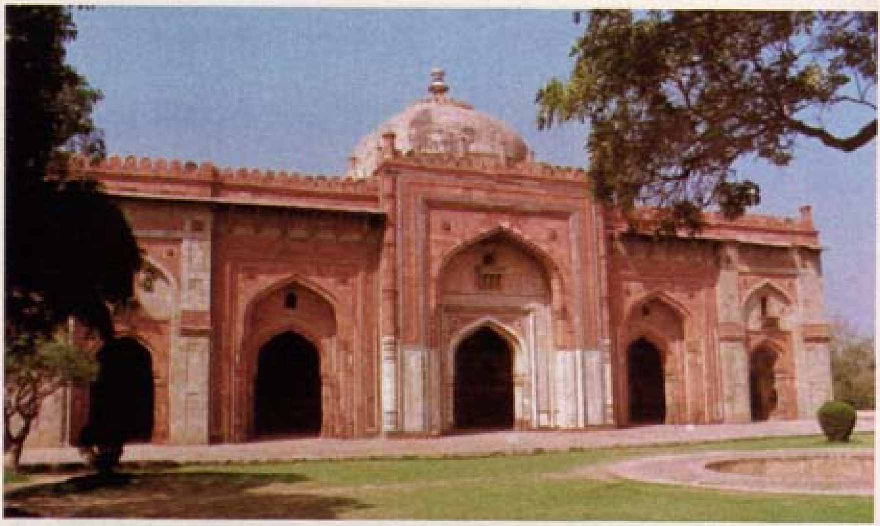
(क) बागे आलम का गुम्बद, पृष्ठ 80 देखें



(ख) सिकन्दर लोदी का मकबरा, पृष्ठ 93 देखें



बड़ा गुम्बद : मकबरा तथा मस्जिद, पृष्ठ 90 देखें



(क) क़ला-ए-कुहना मस्जिद : प्रार्थना कक्ष का अग्रभाग पृष्ठ 125 देखें



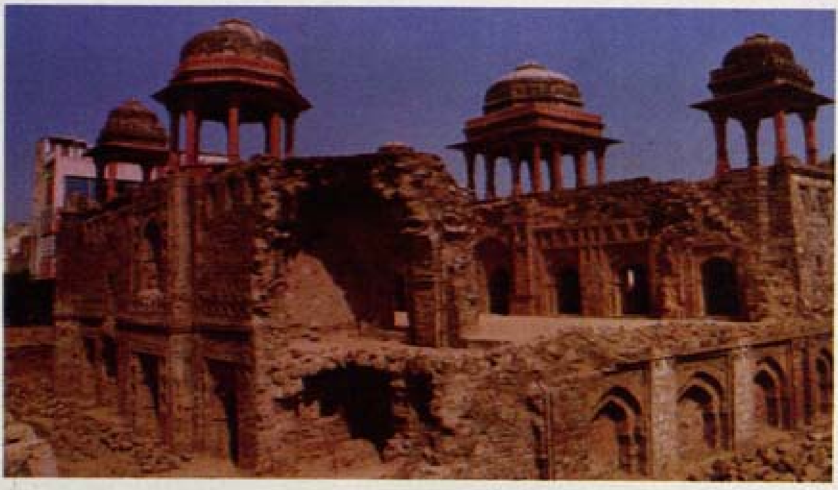
(ख) जामे मस्जिद : प्रार्थना कक्ष का अग्रभाग, पृष्ठ 144 देखें



(क) बेगमपुरी-मस्जिद : प्रार्थना कक्ष का अग्रभाग, पृष्ठ 70 देखें



(ख) मोठ-मस्जिद : प्रार्थना कक्ष का पिछला हिस्सा, पृष्ठ 79 देखें



(क) जहाज महल, पृष्ठ 65 देखें



(ख) खाने-खाना का मकबरा : दक्षिण का अग्रभाग, पृष्ठ 119 देखें



पुराना किला : उत्खनित-स्थल, पृष्ठ 128 देखें

फलक - 22



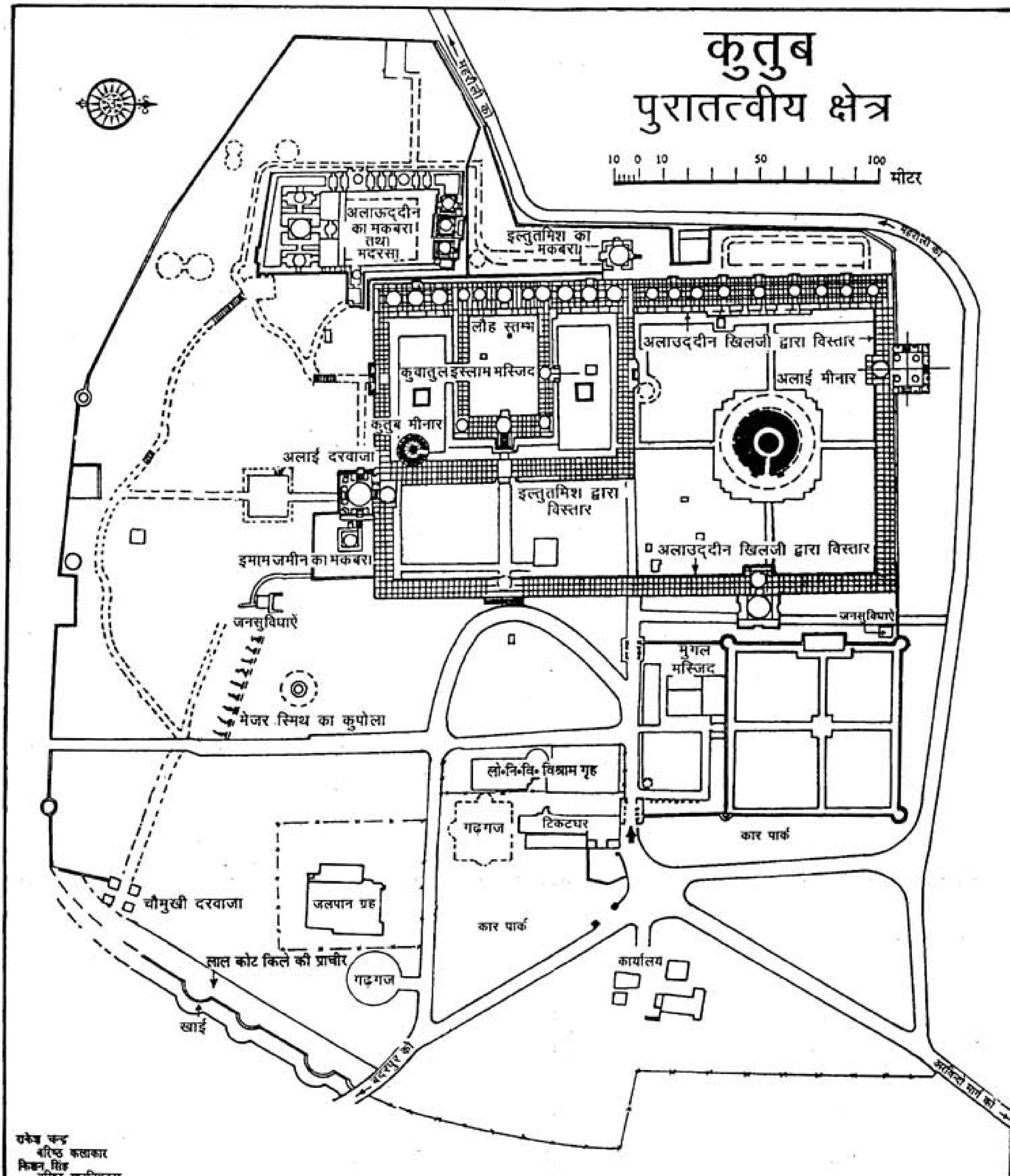
लाल किला : लाहौरी गेट, पृष्ठ 147 देखें

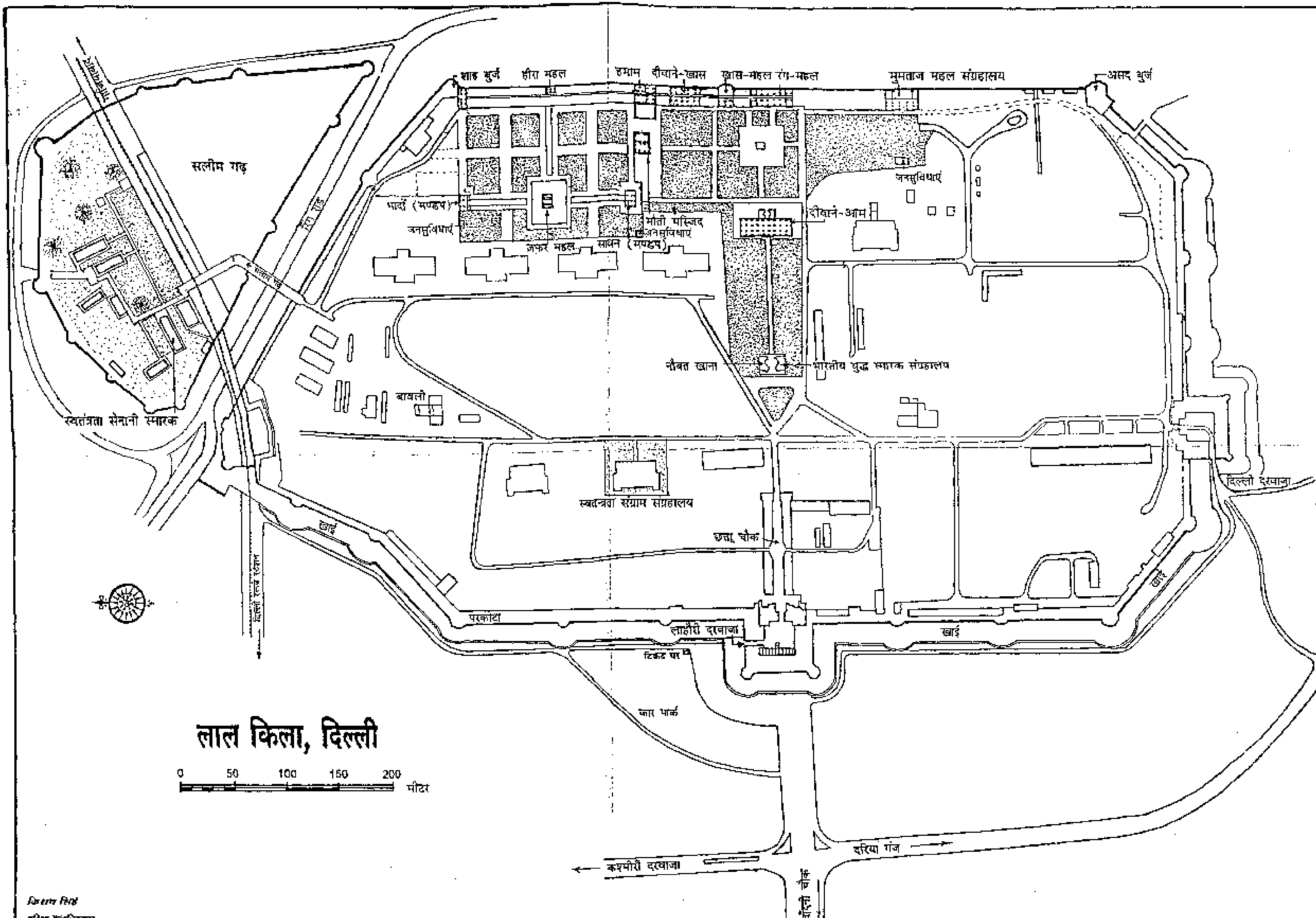


लाल किला, दीवाने-आम : शाही तख्त के साथ भीतरी भाग, पृष्ठ 149 देखें



लाल किला : तसबीह खाना : न्याय की तराजू के साथ संगमरमर की यवनिका


कुतुब
पुरातत्वीय क्षेत्र
10 0 10 50 100
मीटर
अलाऊद्दीन का मकबरा तथा मदरसा
इल्तुतमिश का मकबरा
लौह स्तम्भ
अलाउद्दीन खिलजी द्वारा विस्तार
कुव्वातुल इस्लाम मस्जिद
अलाई मीनार
कुतुब मीनार
अलाई दरवाजा
इल्तुतमिश द्वारा विस्तार
इमाम जमीन का मकबरा
अलाउद्दीन खिलजी द्वारा विस्तार
जनसुविधाऐं
जनसुविधाऐं
मुगल मस्जिद
मेजर स्मिथ का कुपोला
लो॰नि॰वि॰ विश्राम गृह
गढ़गज
टिकटघर
कार पार्क
चौमुखी दरवाजा
जलपान ग्रह
कार पार्क
कार्यालय
लाल कोट किले की प्राचीर
गढ़गज
खाई
वरिष्ठ कलाकार
वरिष्ठ मानचित्रकार


शाह बुर्ज
हीरा महल
हमाम
दीवाने-खास
खास-महल
रंग-महल
मुमताज महल संग्रहालय
असद बुर्ज
सलीम गढ़
जनसुविधाएं
भादों (मण्डप)
जफर महल
सावन (मण्डप)
मोती मस्जिद
दीवाने-आम
नौबत खाना
भारतीय युद्ध स्मारक संग्रहालय
बावली
स्वतंत्रता सेनानी स्मारक
स्वतन्त्रता संग्राम संग्रहालय
छत्ता चौक
दिल्ली दरवाजा
खाई
परकोटा
लाहौरी दरवाजा
टिकट घर
जार पार्क
लाल किला, दिल्ली
0
50
100
150
200
मीटर
कश्मीरी दरवाजा
दरिया गंज
चाँदनी चौक

और अन्य इमारतें हैं जिनमें से कुछ आकार में बड़ी हैं तथा सम्पूर्णतः वास्तुकला के गुणों से रहित नहीं हैं हालांकि अब ये कुछ जीर्णावस्था में हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इनमें से बहुत-सी लोदी काल के दौरान बनवाई गई थीं।

इस क्षेत्र के महत्वपूर्ण संस्मारकों में से हैं-तीन गुम्बदों वाला मकबरा जो तीन बुर्जी कहलाता है और वह मुहम्मदपुर गांव के पूर्व में है, मुनीरका गांव में मलिक मुनीरका मस्जिद, और उसके उत्तर में लगभग 1 किलो मीटर पर वजीरपुर-का-गुम्बद, रामकृष्णपुरम के भीतर गुम्बद रहित मुण्डा गुम्बद है और इसी कॉलोनी के दक्षिण-पश्चिम में एक अष्टभुजाकार कक्ष सहित दूसरी गुम्बद रहित इमारत है परन्तु विशाल मुंड़ा गुम्बद के पूर्व में थोड़ा कम विशाल बड़ा लाओ का गुम्बद और इसके उत्तर-पश्चिम में लगभग 500 मीटर पर बजरे का गुम्बद तथा इसके उत्तर-पश्चिम में दूसरा नाम रहित मकबरा है, जिसके पश्चिमी मेहराब पर सिकन्दर लोदी के शासन काल का अभिलेख लगा हुआ है।

21. नजफ खां का मकबरा

दिल्ली-मेहरोली सड़क के पूर्व में सफदरजंग हवाई अड्डे, जिसे पहले विलिंगडन हवाई अड्डे के नाम से जाना जाता था, के सामने अपने बड़े बगीचे से घिरा और पूर्व की ओर फाटक सहित नजफ खां का मकबरा है, जो अब खंडहर है, यह मकबरा इस अहाते के बीच में है और एक उठे हुए चबूतरे पर है, मूल रूप में इसके सामने की ओर लाल बलुआ पत्थर लगे थे। और उसके शिखर पर दो उत्कीर्ण संगमरमर की कब्रें हैं जिनमें से एक नजफ खां की है और दूसरी उसकी पुत्री फातिमा की है। वास्तविक कब्रें इस चबूतरे के बीच बने दो कमरों में से एक में है। आजकल नये सिरे से लगाया गया बाग अहाते के भीतर चारों ओर है।

नजफ खां का संबंध फारस के सफवी बादशाहों से था और वह अपनी बहन के साथ मुहम्मद शाह (1719-48) के दरबार में आया था तथा बाद में उसने शाह आलम तृतीय (1759-1806) की सेवा में प्रवेश किया। उसका देहान्त सन् 1782 में हुआ और असकी बेटी का देहान्त सन् 1820 के प्रारम्भ में हुआ था।

22. सफदरजंग का मकबरा

मुहम्मद शाह (1719-48) के अधीन अवध के सूबेदार मिर्जा मुकीम अबुल मंसूर खां का मकबरा, जिसका उपनाम सफदर जंग (1739-54) था और जो बाद में उसका वजीरे आजम भी बना, उसका मकबरा बगीचानुमा मकबरे के नक्शे की अन्तिम मिसाल है जो हुमायूं के मकबरे (फलक 1, पृष्ठ 104) से बनना प्रारम्भ हुआ था। इस मकबरे के पूर्वी प्रवेश द्वार पर लगे एक अभिलेख के अनुसार सफदरजंग के बेटे नवाब शुजाउद्दौला ने 1167 हिजरी (सन् 1753-54) में इसे बनवाया था। 300 वर्ग मीटर से उधिक इसके विस्तृत बगीचे का अहाता चौड़े रास्तों और तालाबों द्वारा चार चौकोर भागों में बंटा हुआ है और ये भाग भी मुगल बगीचों (चार बाग) के नमूने पर रास्तों द्वारा छोटे चार चौकोर भागों में बंटे हुए हैं। इस अहाते की ऊंचे अनगढ़े पत्थरों से निर्मित दीवारें हैं जिनके ऊपर विभिन्न महलों में पानी ले जाने के लिए नालियां बनी हैं और उनके भीतरी ओर ताकनुमा मेहराबों की शृंखलाएं हैं और चारों कोनों पर अष्टभुजाकार बुर्ज (छतरियां) हैं। पूर्व की ओर बीच में अनेक कमरे, एक आंगन और एक मस्जिद सहित अहाते का एक दुमंजिला भव्य प्रवेश द्वार है, जबकि दूसरी दिशाओं में बहुकक्षीय लम्बे चौड़े मंडप हैं जो उत्तर, दक्षिण और पश्चिम में मूल रुप में क्रमशः मोती महल, बादशाह पसन्द और जंगली महल के नाम से विख्यात थे। दूसरी मंजिल पर लाल बलुआ पत्थर से निर्मित यह मस्जिद स्पष्टतः बाद में जोड़ी गई है।

संगमरमर से उभरे हुए लाल और भूरे पत्थर से निर्मित 18.28 वर्ग मीटर का यह दुमंजिला मकबरा बगीचे के बीच में स्थित है। यह मकबरा एक ऊंचे चबूतरे पर बना है जिसके बरामदे के सामने मेहराबी दरवाजे हैं और बरामदे के अन्दर की ओर अनेक कोठरियां हैं (फलक 3)। इस मकबरे का बीच का कक्ष आसपास के आठ कमरों सहित चौकोर है जिसके कोने के कमरे अष्टभुजाकार और अन्य कमरे आयताकार हैं जिसके बीच के कक्ष में एक स्मारक कब्र है परन्तु दो कब्रें इस चबूतरे के बीच के भूमिगत कक्ष में स्थित हैं, सम्भवतः उनमें से एक सफदरजंग की है और दूसरी उसकी बेगम की है। विभिन्न कमरों की अन्दरूनी छतें उत्कीर्णनों और रंगे गए पलस्तर के काम से अलंकृत हैं। अपनी गोल आकार की रूपरेखा सहित यह बड़ी गुम्बद एक सोलह किनारों वाले ढोल से ऊपर उठती है। इस मकबरे के कोने चुनिन्दा जड़ाऊकाम के संगमरमर की डिज़ाइनों की बहुभुजी मीनारों से अलंकृत हैं और छतरियों द्वारा ढके हुए हैं इस मकबरे के कक्ष के मेहराबी प्रवेश द्वार सभी चारों दिशाओं में ऊंची अंधी मेहराबों के भीतर स्थित हैं।

इस इमारत के लिए संगमरमर और लाल बलुआ पत्थर अब्दुर्रहीम खां खान-ए-खानां के मकबरे से लाया गया था (पृष्ठ 118)। अपने बड़े बगीचे वाले अहाते के साथ सफदरजंग का मकबरा अपने पूर्वरूप अर्थात् हुमायूं के मकबरे के नमूने पर तैयार किया गया है परन्तु इसके अनुपातों की कमजोरी और इसकी अधिक खड़ी ऊंचाई में एक पिरामिडीय भाव का अभाव है, जो इसे एक संतुलित विशेषता से वंचित कर देता है। परन्तु इसकी अपनी सभी कमजोरियां के बावजूद इसे सही तौर पर दिल्ली में मुगल वास्तुकला के दीपक की अन्तिम लौ कहा गया है।

23. लोदी गार्डेन्स

(क) मुहम्मदशाह का मकबरा

पुराने लेडी विलिंगडन पार्क में, जिसे अब लोदी गार्डेन्स के लोकप्रिय नाम से जाना जाता है, सैयद और लोदी कालों के अनेक संस्मारक मौजूद

है। सैयद वंश के तीसरे शासक मुहम्मदशाह (1434-44) के मकबरे में विशिष्ट अष्टभुजाकार नमूने को अपनाया गया है जिसके बीच का अष्टभुजाकार कक्ष बरामदों से घिरा हुआ है तथा प्रत्येक दिशा के बरामदे में तीन-तीन मेहराबी दरवाजे हैं और बरामदे के ऊपर चारों तरफ छज्जे हैं। एक ढलवां पुश्ता इस इमारत के प्रत्येक कोण पर है। प्रत्येक दिशा में फल घर मध्य में एक छतरी जिसका गुम्बद मध्यवर्ती विशाल गुम्बद की रूपरेखा के अनुकरण पर बना है। यह मध्यवर्गी गुम्बद एक सोलह किनारों वाले ढोल के ऊपर शानदार ढंग से ऊपर उठता है जिसके हर कोने पर छोटी मीनार है। इस गुम्बद के ढोल के कोनों पर छोटी मीनारों के पीछे दूसरा छोटी मीनारों की शृंखला ऊपर उठती है। गुम्बदों के सिखर इधर-उधर फैले हुए कमल से सुसज्जित हैं। उनके ऊपर के अन्य भाग अब गायब हैं। इस गुम्बद की अन्दरूनी छत अलंकृत है।

इस कक्ष की प्रत्येक दिशा में एक शहतीर और दासों का दरवाजा है यद्यपि मुख्य द्वार दक्षिण की ओर है। ये दरवाजे तथा बाहर के बरामदे के दरवाजे प्रारंभ में जालीदार परदों से बन्द कर दिए गए थे। कक्ष के पश्चिम की ओर का दरवाजा बाद में पूरी दीवार से बन्द कर दिया गया है जिससे यह एक मस्जिद का काम दे सके। इसके अन्दर आठ कब्रें हैं जिनमें से बीच की कब्र के बारे में यह माना जाता है कि यह मुहम्मद शाह की है। इस मकबरे की सामान्य विशेषताएं पहले बने मुबारक शाह के मकबरे (पृष्ठ 85) से मिलती-जुलती हैं, परन्तु रूपरेखा के मामले में अपने सुनिश्चित संयोजन, ठोसपन, ऊंचे गुम्बद और मेल खाती हुई छतरियों तथा अपने बेहतर अनुपातों से यह अधिक खूबसूरत है।

(ख) बड़ा-गुम्बद मस्जिद

उपर्युक्त मुहम्मदशाह के मकबरे के उत्तर-पूर्व में लगभग 300 मीटर पर बड़ा गुम्बद (फलक 17) है जो एकभव्य गुम्बद सहित एक चौकोर

मकबरा है जिसके कोनों पर छोटी मीनारें हैं और उसका अग्रभाग दुमंजिले-इमारत की एक प्रतिकृति है। मेहराब तथा टोड़े और सरदलों की शहतीरों का यहां फैलाव के रूप में प्रयोग किया गया है। अन्दर की ओर गचकारी के काम और चित्रकारी से अलंकृत किया गया है जब कि बाहर की ओर भूरे पत्थर की नीरसता को लाल और काले पत्थरों के इस्तेमाल से उभारा गया है। इसमें जो व्यक्ति दफन है उसकी पहचान नहीं हो पाई है परन्तु यह स्पष्ट है कि वह सिकन्दर लोदी के शासन काल (1489-1517) में एक उच्चपदीय अधिकारी रहा होगा।

पश्चिम की ओर बड़ा गुम्बद से सटी हुई एक मस्जिद है जो बड़ा गुम्बद मस्जिद के नाम से विख्यात है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसका निर्माण इस मकबरे के सम्पूरक के रूप में हुआ होगा। चौका पत्थर से निर्मित, इसके आयताकार प्रार्थना-कक्ष के सामने की ओर पांच मेहराबी द्वार हैं जिनमें से बीच का मेहराब एक प्रक्षेपी-ढांचे में खड़ा मेहराब है। मेहराबों पर छज्जा निकलता है। इस मस्जिद के तीन बीच के कक्ष निचले गुम्बदों से आच्छादित है, छोरों के कक्ष चपटी छतों से ढके हुए हैं। मिहराब कक्ष के पीछे से उत्तर-दक्षिण और पश्चिम की ओर मंडपयुक्त खिड़कियां जैसी विशेषताएं है जो प्रारंभिक मुगल कालीन मस्जिदों से फर्क करती हैं। मिहराब के बहिर्निवेशन की बगलें और पिछले कोने तुगलक शैली में शुण्डाकार मीनारों से घिरे हुए हैं जोकि शुरू के मुगल- कालीन और सूरकालीन अष्टभुजाकार बुर्जों के शुरुआती स्वरूप की प्रतीति कराते हैं। इस मस्जिद को रंगीन टाइलों और बेलबूटों तथा उत्कीर्णनों और चित्रित पलस्तर में गढ़कर कुरान संबंधी लेखों द्वारा शानदार ढंग से अलंकृत किया गया है। इसके आंगन के बीच के उठे हुए चबूतरे के बारे में यह विश्वास किया जाता है कि इसमें इसके निर्माता की कब्र थी परन्तु इस बात की ज्यादा संभावना है कि यहां वज़ू करने वालों के लिए एक छोटा तालाब रहा होगा।

दक्षिणी मिहराब पर लगे अभिलेख से पता चलता है कि यह मस्जिद 900 हिजरी (सन् 1494) में सिकन्दर लोदी के शासन काल

(1487-1517) के दौरान बनाई गई होगी। इसका मुगल-मस्जिद के विकास में एक महत्वपूर्ण स्थान है (पृष्ठ 32)। बड़ा गुम्बद की प्रमुख स्थिति और उसके भीतर कब्र के इस समय न होने के कारण कुछ विद्वानों को यह भ्रम हो गया है कि इसे मस्जिद के प्रवेश द्वार के रूप में बनाया गया था। ऐसा लगता है कि प्रार्थना कक्ष के सामने का लम्बा कक्ष बाद में एक मेहमान खाना या अतिथि गृह के रूप में बनवाया गया था।

(ग) शीश-गुम्बद

बड़ा गुम्बद मस्जिद से लगभग 50 मीटर उत्तर में शीश गुम्बद है। वास्तुकला की दृष्टि से इसमें एक दुमंजिलो इमारत की आकृति की झलक (पृष्ठ 29) सहित चौकोर लोदी मकबरों के सामान्य आकार को अपनाया गया है और यह उपर्युक्त बड़ा गुम्बद से ज्यादा भिन्न नहीं है। इसकी पश्चिमी दीवार में एक मिहराब है जो एक मस्जिद का काम देती थी, परन्तु अन्य दिशाओं में एक प्रक्षेपी ढांचे के बीच में एक-एक प्रवेश द्वार है। पीछे की ओर का मेहराबी प्रक्षेपण और पट्टेदार रद्दों के नीचे दीवारों का बाकी भाग क्रमशः सँकरे और चौड़े पत्थरों के रद्दों से बनाया गया है। कोटरिका युक्त आले फीतेदार रद्दों के ऊपर और नीचे है और उनके ऊपरी भागों में छोटे रोशनदान हैं। अन्दर की ओर, अन्दरुनी छत उत्कीर्ण पलस्तर के काम से अलंकृत है जिसमें फूलपत्ती वाले नमूने और कुरान संबंधी लेख हैं। प्रारंभ में यह मकबरा नीले टाइलों द्वारा शानदार ढंग से सजाया गया था जिसकी छजली और रस्सीदार रद्दों के नीचे मुहार के प्रवेश द्वार के ऊपर समतल दिलहे के चौखटे पर चित्रावलियां अलंकृत थीं। इस अलंकरण के केवल अब निशान ही बाकी बचे हैं और उन्हीं से उसका फारसी नाम दिया गया जिसका अर्थ है "चमकदारगुम्बद"।

यह पता नहीं है कि इस मकबरे में किन्हें दफन किया गया था हालांकि इसके भीतर अनेक कब्रें मौजूद हैं। परन्तु यह स्पष्ट है कि इसे लोदी काल

में, शायद सिकन्दर लोदी (1489-1517) के शासन काल में बनाया गया था।

(घ) सिकन्दर लोदी का मकबरा

यह मकबरा लोदी गार्डेन्स के उत्तर-पश्चिमी कोने पर शीश गुम्बद से लगभग 250 मीटर उत्तर में स्थित है। यह मुबारकशाह (पृष्ठ 85) और मुहम्मद शाह के मकबरों जैसा एक अष्टभुजाकार मकबरा है जिसके बीच में एक अष्टभुजाकार कक्ष एक बरामदे से घिरा हुआ है और बरामदे की प्रत्येक दिशा में तीन-तीन मेहराबें है तथा जिसके कोने ढलवां पुश्तों से घिरे हुए हैं। इसके ऊपर की छतरियां नष्ट हो गई हैं (फलक 16 ख)।

यह मकबरा पश्चिम की ओर एक दीवार वाली मस्जिद और दक्षिण की ओर बाहरी रचनाओं वाले एक प्रवेश द्वार सहित ऊंची दीवारों के भीतर एक चौकोर बाग से घिरा हुआ है जो इसे एक शानदार स्वरूप प्रदान करते हैं।

(ङ) अठपुला

सिकन्दर लोदी के मकबरे से थोड़ी दूर पूर्व में सात मेहराबों वाला एक पुल है और जिस नाले पर यह बनाया गया था उसके ऊपर बीच के मेहराबों का फैलाव अधिक है तथा किनारे के मेहराबों में कम होता गया है। पुला शब्द स्पष्टतया द्वारों का संकेत नहीं देता बल्कि पुल के खंभों का संकेत देता है जिनकी संख्या इस पुल में आठ है।

ऐसे अनेक पुल मुगल काल के दौरान बनाए गए थे और कम से कम दिल्ली के आसपास के ऐसे दो के बारे में जानकारी है (पृष्ठ 102 और 119)। यह माना जाता है कि नवाब बहादुर नामक व्यक्ति ने अकबर के शासन काल (1556-1605) में अठपुला का निर्माण करवाया था।

24. कुश्क-महल

यह संस्मारक अब तीन मूर्ति भवन के अहाते में स्थित है जिसमें नेहरु स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय है। यह अनगढ़ पत्थरों से निर्मित लगभग एक चौकोर इमारत है जिसमें तीन गहरे गलियारे और तीन मेहराबी दरवाजे है जो स्तम्भों पर टिके हुए हैं। इसकी अन्दरुनी बेलनाकार मेहराबी छत को ऊपरी ओर समतल करके तैयार किया गया है।

संभवतः इसे फिरोजशाह तुगलक (1351-88) ने बनवाया होगा और वह इसे अपनी अनेक शिकारगाहों (पृष्ठ 26) में से एक के रूप में इस्तेमाल करता रहा होगा। प्रारम्भ में इसके पास एक बांध था जिसमें वर्षा का जल इकट्ठा किया जाता था।

25. दक्षिणी रिज (पहाड़ी)

(क) मालचा-महल

सरदार पटेल क्रिसेन्ट या पुराने विलिंगडन क्रिसेन्ट से लगभग 1 किलो मीटर पश्चिम में सरदार पटेल रोड से पहुंचने पर मालचा महल या मालचा-बिसदरी फिरोजशाह तुगलक द्वारा बनवाई एक दूसरी शिकारगाह है। परन्तु यह कुश्क-महल से बड़ा है और तीन मुख्य कक्षों सहित, जिसमें बीच वाला बड़ा है और जिसके प्रत्येक कक्ष में तीन तीन कमरे हैं, लगभग चौकोर है। इसके दक्षिण में एक बांध था जिसमें वर्षा का पानी भरा रहता था।

(ख) भूली भटियारी का महल

यह स्मारक पंचकुइयां और ओरिजिनल रोड के चौराहे से लगभग 500 मीटर दक्षिण-पश्चिम में है। पूर्ववर्ती दो संस्मारकों के समान यह भी

एक शिकार गाह है जिसे फिरोजशाह तुगलक ने बनवाया था। बांध से घिरा हुआ यह एक जलाशय के उत्तरी किनारे पर स्थित है जिसके केवल कुछ भाग ही मिलते हैं। यह एक आयताकार अहाता है जिसमें इसके उत्तरपूर्वी कोने से दो प्रवेश द्वारों से प्रवेश किया जाता था और चौड़े दक्षिणी बांध पर इमारतों के अवशेष हैं। इस अहाते की दक्षिणी और पूर्वी दीवारों पर बुर्ज हैं। इसे अब यूथ होस्टल के रुप में इस्तेमाल किया जा रहा है।

"आथार-उस-सनादीद" के लेखक सय्यद अहमदखां के अनुसार इस स्थान पर बु-अली भट्टी नाम के एक व्यक्ति का कब्जा था जो बिगड़कर भूली या भोली भटियारी, सराय की रखवाली करने वाली सीधी-सादी (विस्मरण शील महिला) बन गया और इसीलिए इसको यह वर्तमान नाम मिला है परन्तु इस परम्परा का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

26. जन्तर-मन्तर

जन्तर-मन्तर (फलक 4) चिनाई से निर्मित खगोलीय उपकरणों की एक वेधशाला है जो कनाट सर्कस से लगभग 250मीटर दक्षिण में पार्लियामेंट स्ट्रीट पर स्थित है। ये उपकरण जयपुर के महाराज जयसिंह द्वितीय (1699-1743) ने निर्मित करवाए थे, जो खगोलीय प्रेक्षणों में अभिरुचि रखते थे और जिन्होंने अपने निर्माणों को शुरु करने से पहले पश्चिमी और पूर्वी सभी प्रणालियों का अध्ययन किया था। आरम्भ में उन्होंने धातु के उपकरण बनवाए थे जो अभी भी जयपुर में सुरक्षित हैं परन्तु बाद में उन्होंने इन्हें त्याग दिया।

दिल्ली की वेधशाला का निर्माण पहले करवाया था और इसके बाद इसी प्रकार की वेधशालाएं जयपुर, उज्जैन, वाराणसी और मथुरा में बनवाई गईं, जिनमें से मथुरा की अब मौजूद नहीं है। परम्परा के अनुसार जयसिंह ने दिल्ली की वेधशाला सन् 1710 में बनवाई थी जबकि आथार-उस-सनादीद के लेखक सय्यद अहमद खां इसका निर्माण सन्

1724 में हुआ मानते हैं। जयसिंह ने स्वयं उल्लेख किया है कि उसने ये उपकरण बादशाह मुहम्मद शाह के आदेश से बनवाए थे, जो सन् 1719 में राजसिंहासन पर बैठा था और जयसिंह को सूबेदार का पद दिया: अत: सय्यद अहमद खां की तिथि सच्चाई के अधिक निकट मालूम होती है।

ईंटों व अनगढ़े पत्थरों से निर्मित और चूने से पलस्तर किये गए ये उपकरण कई बार मरम्मत किए गए हैं किन्तु किसी बड़े पैमाने पर हेर-फेर के बिना इनका जीर्णोद्धार किया गया है। उनमें से सम्राट यन्त्र एक विषुवत् रेखा संबंधी धूपघड़ी है जो पृथ्वी की धुरी के समानान्तर कर्ण सहित एक त्रिकोणीय शंकु है और इस शंकु के दोनों ओर विषुवत् रेखा के समतल के समानांतर ग्रहकक्षा का एक वृत्तपाद है। इसके दक्षिण में जो जय प्रकाश यंत्र है वह सूर्य और अन्य खगोलीय पिण्डों की स्थिति का पता लगाने के लिए दो अवतल अर्धगोलीय इमारतें हैं। बीच में एक स्तम्भ सहित जयप्रकाश के दक्षिण में दो गोलाकार इमारतें रामयन्त्र कहलाती हैं जिनकी दीवारें और फर्श समतल (अजिमुथ) तथा खड़े (उन्नतांश) के अध्ययन के लिए क्रमबद्ध किए गए हैं। उसके उत्तर-पश्चिम में मिश्र यन्त्र चार यन्त्रों को एक में मिलाता है और इसीलिए इसका यह नाम है। यह नियत चक्र है जो चार स्थानों पर मध्यन्दिन बताते है जिनमें से दो यूरोप में हैं और एक जापान और एक प्रशान्त महासागर में है। आधा त्रिकोणीय शंकु का भाग विषुवतरेखी धूपघड़ी पर है। दक्षिणोत्तर भित्ति यन्त्र, मध्याह्न के उन्नतांश और कर्क राशि वलय को प्राप्त करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है जो सूर्य के कर्क राशि में प्रवेश को इंगित करता है।

दर्शक को सलाह दी जाती है कि वह यदि इन उपकरणों के कार्य संचालन का अध्ययन करने में दिलचस्पी रखता हो तो वह निम्नलिखित पुस्तकों में से किसी पुस्तक का अध्ययन करे - 'दि एस्ट्रॉनॉमिकल ऑब्जर्वेटरीज आफ जयसिंह' कलकत्ता, 1918, तथा 'ए गाईड टू ओल्ड ऑब्जर्वेटरीज ऐट दिल्ली, जयपुर, उज्जैन, बनारस, कलकत्ता, 1920। ये दोनों जी0 आर0 केय्री द्वारा लिखित हैं।

इन उपकरणों के पूर्व में भैरव का छोटा मन्दिर है जो लगता है कि महाराज जयसिंह द्वारा बनवाया गया था।

27. हनुमान मन्दिर

कनॉट सर्कस से दक्षिण-पश्चिम में लगभग 250 मीटर पर बाबा खड़क सिंह मार्ग (पुरानी इरविन रोड) पर स्थित यह मन्दिर वास्तुकला की दृष्टि से कम महत्व का है। परन्तु दिल्ली के निवासी विशेष रुप से इसके भक्त हैं। ऐसा लगता है कि पुराने मन्दिर का निर्माण महाराज जयसिंह ने उसी समय करवाया था जबकि जन्तर-मन्तर का निर्माण हुआ था परन्तु उसके बाद से इसमें बड़े पैमाने पर नवीकरण हो चुका है।

28. अग्रसेन की बावली

कस्तूरबा गांधी रोड (पुरानी कर्जन रोड) और सिकन्दरा रोड को काटती हुई उसके आर-पार अतुल ग्रोवरोड (पुरानी हैली रोड) से हटकर एक तंग गली है जो दर्शक को अग्रसेन की बावली पर ले जाती है। भूमितल पर उत्तर-दक्षिण की ओर 60 मीटर लम्बी और 15 मीटर चौड़ी और अनगढ़े और गढ़े हुए पत्थरों से निर्मित यह दिल्ली की बेहतरीन बावलियों में से एक है। मेहराबदार आलों की दो श्रृंखलाओं वाली मोटी दीवारों के बीच लम्बी सोपान पंक्ति है जिसके साथ इन आलों की निचली श्रृंखला गहरे और शेष आंशिक तौर पर पानी में रहती है तथा ऊपर की श्रृंखला के आले सतह से केवल कुछ बाहर निकले रहते हैं जो इसे एक भव्य दृश्य प्रदान करते हैं। उत्तरी छोर पर एक गोलाकार कुआं है परन्तु सीढ़ियों की पंक्तियों और कुएं के बीच भूमितल पर एक मंच या चबूतरा है। दीवारों के बगल से जाती हुई सीढ़ियां नीचे पानी की सतह तक जाती हैं।

सोपान की पंक्तियों के ऊपर से पश्चिम की ओर एक छोटी मस्जिद है जिसके सामने तीन द्वार हैं। "ह्वेल की पीठ" की आकृति की छत सहित परन्तु जिसके नीचे के किनारे एक कोणीय शिखर पर मिलते हैं, चाप-स्कन्धों में गचकारी किए गए गोलाकार फलकों और चैत्य-अभिप्राय के साथ नक्काशी किए गए लाल बलुआ पत्थर के चार स्तम्भों वाली यह अभूतपूर्व इमारत है। यह मस्जिद बगलों में भूमिगत दलानों को ठोस रूप से भरकर बनाई गई है। शायद इस बावली के प्रवेश संबंधी संरचनाओं के कुछ भाग नष्ट हो गए हैं। इस बावली की वास्तुकला संबंधी विशेषताएं बाद के तुगलक या लोदी काल की ओर संकेत करती है। हालांकि परम्परा के अनुसार यह कहा जाता है कि इसे राजा अग्रसेन ने बनवाया था जिन्हें अग्रवाल जाति का पूर्वज समझा जाता है। अपने गहरे पानी के कारण यह बावली ग्रीष्म ऋतु में एक तरण-ताल का काम देती है।

29. सूरज कुंड

जिला गुड़गांव में तुगलकाबाद से लगभग 3 किलो मीटर दक्षिण-पूर्व में सूरजकुंड है और यहां कुतब-बदरपुर सड़क पर कुतब मीनार से लगभग 11.5 किलोमीटर दक्षिण की ओर दो शाखाओं में बँटने वाली पक्की सड़क से पहुंचा जा सकता है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि इस जलाशय को तोमर वंश के राजा सूरजपाल ने, जिसका अस्तित्व भाट परंपरा पर आधारित है, दसवीं शताब्दी में निर्मित करवाया था। यह निर्माण पहाड़ियों (फलक 6) से आने वाले वर्षा के पानी को एकत्र करने के लिए एक अर्द्ध गोलाकार रूपरेखा के आधार पर सीढ़ीदार पत्थर के बांध के रूप में है। यह विश्वास किया जाता है कि इसके पश्चिम में सूर्य का एक मन्दिर था जिसके कुछ नक्काशीयुक्त पत्थरों को हाल ही में जलाशय से पुनः प्राप्त किया गया है अथवा जिनका बाद के निर्माणों में पुनः इस्तेमाल किया गया है।

फिरोजशाह तुगलक (1351-88) ने, जिसने सिंचाई संबंधी निर्माण कार्यों में गहरी अभिरुचि दिखाई है, इसकी सीढ़ियों पर चूना-कंकरीट बिछवाकर इसकी सीढ़ियों और चबूतरों की मरम्मत करवाई थी। बाद में एक किला बन्द अहाता जिसे अभी तक गढ़ी कहा जाता है इस मन्दिर के परम्परागत स्थल के आसपास पश्चिमी किनारे पर निर्मित किया गया।

चट्टानों की दरारों से रिसने वाले ताजे पानी का तालाब, जिसे सिद्ध-कुंड कहते हैं, सूरज कुंड के दक्षिण में लगभग 600 मीटर पर स्थित है और कुछ धार्मिक पर्वों पर यहां बहुत बड़ी संख्या में तीर्थ यात्री आते हैं।

30. अनंगपुर बांध

सूरजकुंड से लगभग 2 किलोमीटर दक्षिण पश्चिम में अनंगपुर (जिसे अड़ंगपुर भी कहते हैं) गांव के निकट एक बांध है जिसके बारे में यह माना जाता है कि इसे तोमर वंश के शासक अनंगपाल ने बनवाया था जिसे लालकोट के निर्माण करवाये जाने का भी श्रेय दिया जाता है (पृष्ठ 49)। यहां तक आज मथुरा रोड द्वारा भी दिल्ली से लगभग 19 किलोमीटर की दूरी पर एक सड़क से जो पश्चिम की ओर जाती है, पहुंचा जा सकता है। यहां एक तंग दर्रे के मुहाने के पार स्थानीय क्वार्टजाइट पत्थर का एक बांध बनाकर वर्षा के पानी को रोका गया है। रोके गए पानी से बनी यह झील बरसात के महीनों में एक भव्य दृश्य उपस्थित करती है। इस बांध में बने जल द्वार इस तंग दर्रे के जरिए पानी को बहने देते थे और जिससे निचले खेतों की सिंचाई होती थी।

पास की पहाड़ियों में कुछ किले-बन्दियां भी हैं जो इस लोकप्रिय विश्वास का समर्थन करती हैं कि अनंगपुर राजा अनंगपाल द्वारा स्थापित किए गए एक नगर के स्थल का द्योतक है।

31. तुगलकाबाद क्षेत्र

(क) तुगलकाबाद

तुगलकाबाद का किला (तुगलकाबाद) कुतुब-बदरपुर सड़क पर कुतुब मीनार से लगभग 8 किलोमीटर पर एक चट्टानी पहाड़ी पर स्थित है। गयासुद्दीन तुगलक (1321-25) द्वारा निर्मित यह दिल्ली का तीसरा नगर है जिसमें 6.5 किलोमीटर के परिमाण सहित योजना में मोटे तौर पर अष्टभुजाकार की 10 से 15 मीटर ऊंचे अनगढ़े पत्थरों से निर्मित दीवारों में अन्तरालों पर बुर्ज और फाटक हैं (फलक 12 क)। इसके दक्षिण में एक बड़ा जलाशय था जिसे इसके पूर्व में दो पहाड़ियों के बीच पुश्तों का निर्माण करके बनाया गया था। एक उपसेतु इसे गयासुद्दीन के मकबरे से जोड़ता था जो पानी के बीच स्थित था, जबकि इसके दक्षिण पूर्वी कोने के समीप का एक चौड़ा बांध आदिलाबाद के किले तक पहुंचने का प्रवेश मार्ग बनाता था, जिसे दूसरी ओर एक दूसरी पहाड़ी पर थोड़े दिन बाद बनाया गया था।

तुगलकाबाद को मुख्यतः तीन भागों में बांटा गया था। कुतुब-बदरपुर सड़क से वर्तमान प्रवेश द्वार के पूर्व में ऊंची दीवारों और बुर्जों सहित एक आयताकार क्षेत्र किले का काम देता था। इसी प्रकार अनगढ़े पत्थरों की दीवारों और बुर्जों से घिरे पश्चिम में बिल्कुल ही निकट विस्तृत क्षेत्र में महल बने हुए हैं। इसके आगे उत्तर में शहर था जो अब घरों के खंडहरों से पहचाना जाता है। शहर की गलियां जिनके चिन्ह अब भी देखे जा सकते हैं, जो एक तरफ फाटकों से लेकर सामने की ओर के फाटकों तक एक समकोणात्मक रुप में जाती थीं। दुर्ग के अहाते के भीतर विजय मंडल के नाम से विख्यात एक बुर्ज है और अनेक बड़े बड़े कमरों के अवशेष हैं जिनमें एक लम्बा भूमिगत मार्ग भी शामिल है।

आदिलाबाद से जोड़ते हुए बांध के समीप जल द्वार है। जिनके माध्यम से निचले खेतों की सिंचाई करने के लिए पानी को नियंत्रित किया जाता था।

(ख) गयासुद्दीन का मकबरा

ऊंची-ऊंची झुकाव वाली पंचभुजीय पत्थर की दीवारों के घेरे में बना तथा जिसे बुर्जों से सुदृढ़ किया गया था, गयासुद्दीन का स्वनिर्मित मकबरा एक छोटे किले के समान दिखाई देता है। मूल रूप में यह एक विशाल जलाशय के भीतर खड़ा था और एक उपसेतु द्वारा तुगलकाबाद के किले से जुड़ा हुआ था, जिसे अब कुतुब-बदरपुर सड़क द्वारा अलग कर दिया गया है। इस मकबरे के अहाते में प्रवेश एक लाल बलुआ पत्थर के एक विशाल प्रवेश द्वार के जरिए होता है जिस तक सीढ़ियों के माध्यम से पहुंचा जा सकता है। लाल बलुआ पत्थर की ढलवां दीवारों तथा कंगूरों से घिरा लगभग 8 वर्ग मीटर का यह मकबरा, एक सफेद संगमरमर के गुम्बद द्वारा आच्छादित है जो एक अष्टभुजाकार ढोल पर बनाया गया है। एक रस्सीदार रद्दा, उत्कीर्ण पटल, मेहराबों के किनारे, जालीदार परदे सबके सब संगमरमर के हैं और "कमल कलियों" के झब्बों के साथ मिलकर लाल बलुआ पत्थर की नीरसता को भंग करते हैं और इसे अलंकारिकता प्रदान करते हैं (फलक 12 ख), अन्दर की ओर तीन कब्रें हैं, बीच की एक गयासुद्दीन तुगलक की है और अन्य दो के विषय में यह माना जाता है कि ये इसकी बेगम और उसके पुत्र तथा उत्तराधिकारी मुहम्मद बिन तुगलक (1325-51) की हैं।

अहाते की दीवारों के साथ कोष्ठक सामने टोड़ों और सरदल के द्वारों सहित कक्ष या स्तम्भ युक्त गलियारे हैं। उत्तर-पश्चिमी बुर्ज में उसके दक्षिणी दरवाजे के ऊपर एक अभिलिखित पत्थर सहित एक अष्टभुजाकार मकबरा है जिसके अनुसार वहां किसी एक जफर खां को दफन किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह मकबरा पहले से बना हुआ था और जब यहां इसका निर्माण किया जा रहा था उस समय गयासुद्दीन को एक अहाता बनाने का और उसके भीतर खुद का मकबरा तैयार करवाने का विचार आया। इस स्थान को उपर्युक्त अभिलेख में दारुल अमन (शान्ति का

आवास) के रूप में माना गया है तथा गयासुद्दीन के मकबरे के समकालीन वर्णनों में भी ऐसा ही उल्लेख किया गया है।

(ग) आदिलाबाद

तुगलकाबाद के दक्षिण में आदिलाबाद का छोटा किला गयासुद्दीन के बेटे और उसके उतराधिकारी मुहम्मद बिन तुगलक (1325-51) द्वारा बनवाया गया था। वास्तुकला की दृष्टि से यह तुगलकाबाद से अधिक भिन्न नहीं है। इसे तुगलकाबाद से जोड़ने वाले बांध की दीवारें इस शहर की बाहरी दीवारों के रूप में पहाड़ियों के ऊपर तक चली गई हैं और इसमें दो फाटक दिए गए हैं जिसमें से एक दक्षिण-पूर्व की ओर दो बुर्जों के बीच एक अतिरिक्त किलेबन्द द्वार से युक्त और दूसरा दक्षिण-पश्चिम की ओर है। इसके अन्दर एक प्राचीर द्वारा अलग किया गया एक नगर दुर्ग है जो दीवारों में बुर्ज और द्वारों से युक्त है और उसके भीतर महल हैं।

यह किला मोहम्मदाबाद के नाम से भी विख्यात है और सम्भवतः शायद इसे जहांपनाह (पृष्ठ 72) के बाद बनाया गया था।

(घ) नाई-का कोट

इस छोटे किले के खंडहर आदिलाबाद के पूर्व में एक पहाड़ी पर हैं। यह उसी तरीके से परन्तु एक अलग योजना के आधार पर उपर्युक्त वर्णित किलों के समान बनवाया गया था। हाँलाकि यह नाई, धोबी अथवा भंगी के किले के रुप में लोकप्रिय है परन्तु संभवतः इसे मुहम्मद बिन तुगलक ने आदिलाबाद के किले के निर्माण के पूर्व एक निजी निवास के रूप में बनवाया होगा।

32. बुढ़िया वाला पुल

शेरशाह सूर द्वारा निर्मित सिन्धु और सोनार गांव तक के बीच का मुख्य मार्ग, जिसका मुगलों ने रख-रखाव किया और उसमें सुधार किया था, अनुमानतः वर्तमान ग्रैण्ड ट्रंक रोड की सीध को अपनाता था (पृष्ठ 35)। उस पुरानी सड़क पर बने पुलों में दिल्ली से लगभग 21 किलोमीटर पर एक नाले के ऊपर बुढ़िया वाला पुल है जो वर्तमान मथुरा रोड से थोड़ा पूर्व की ओर है और अब डी. एल. एफ. इण्डस्ट्रियल एस्टेट के भीतर स्थित है।

अनगढ़े पत्थरों से निर्मित और पत्थर का खड़ंजा लगे इस पुल की मुंडेरों पर मीनारों सहित इसमें तीन मेहराबदार द्वार हैं। इसका वर्तमान नाम इस परम्परा पर आधारित है कि प्राचीन काल में एक बूढ़ी इसके पास रहती थी जबकि उसके बेटे उसके नीचे तैनात रहते थे। वह यात्रियों को भुलावा देती थी और अपने बेटों को यात्रियों की संख्या के बारे में उपयुक्त संकेत कर देती थी। बेटे उन पर काबू कर लेते थे और उनका बहुमूल्य सामान लूट लेते थे।

33. बदरपुर

मथुरा रोड पर दिल्ली से लगभग 17 किलोमीटर दूर बदरपुर है जो ग्रैंड ट्रंक रोड के साथ निर्मित सरायों में से एक है। जिसे संभवतः जहांगीर ने बनवाया था। यह अनगढ़े पत्थरों से निर्मित दीवारों से घिरे हुए तथा एक बीच के प्रवेश द्वार द्वारा अलग किए गए दो अहातों से युक्त है। उत्तर और दक्षिण की ओर ऊंचे मेहराबयुक्त प्रवेश द्वार हैं जिनसे होकर पहले मुख्य सड़क गुजरती थी।

34. अशोक की शैलोत्कीर्ण राजाज्ञा

मौर्य सम्राट् अशोक (273-36 ईसा पूर्व) का महत्वपूर्ण अभिलेख 1966 में खोजा गया जो श्रीनिवासपुरी के समीप की बाहरी चट्टानों में से एक पर झुकी हुई चट्टान के मुख पर उत्कीर्ण है और यहां तक लाजपत नगर से गुजरने के बाद रिंग रोड से पहुंचा जा सकता है। ब्राह्मी लिपि और प्राकृत भाषा में दस पंक्तियों वाला यह पुरालेख सम्राट् की लघु शैलोत्कीर्ण राजाज्ञाओं के विवरणों में से एक है और यह कहता है कि धर्म के लिए अपने प्रयासों के फलस्वरूप वह भारत (जम्बूद्वीप) के लोगों को देवताओं के निकट लाने में समर्थ हो सका। वह अपनी प्रजा से आकांक्षा रखता है कि चाहे वे प्रतिष्ठित व्यक्ति हों या निचले दर्जे के हों, प्रयास करते रहें ताकि वे स्वर्ग प्राप्त कर सकें क्योंकि लगातार किए गए प्रयासों के अनुसार ही संसिद्धि की मात्रा अधिकाधिक बढ़ती जाएगी।

यह पुरालेख वहां स्थित है जहां से यमुना नदी दिखाई देती है और जो पुराने किले के प्राचीन स्थल से अधिक दूर नहीं है और यह स्थिति इस तथ्य को स्पष्टतः प्रकट करती है कि प्राचीन दिल्ली न केवल एक महत्वपूर्ण नगरी थी बल्कि यह व्यापारिक केन्द्रों और प्रांतीय राजधानियों को जोड़ने वाले मार्ग पर थी।

35. कालकाजी का मंदिर

कालकाजी का मंदिर एक पहाड़ी पर स्थित है जिस तक ओखला इंडस्ट्रियल एस्टेट या कालका जी की आधुनिक बस्ती की बगल में दिल्ली से लगभग 12 किलोमीटर दूर मथुरा रोड से पहुंचा जा सकता है। इसका कोई वास्तुकला संबंधी महत्व नहीं है परन्तु उपासक और तीर्थ यात्री यहां दर्शन करने के लिए आते हैं यद्यपि इसका निर्माण अठारहवीं शताब्दी के मध्य में हुआ था, यह संभवतः एक अधिक प्राचीन स्थल पर स्थित है। बारह

किनारों वाली तथा गुम्बद युक्त इमारत में काली देवी (पिण्डी) का द्योतक प्रस्तर है, जो कि कालिका के नाम से भी जाना जाता है। इस इमारत की समय-समय पर मरम्मत की गई है।

36. हुमायूं के मकबरे का क्षेत्र

(क) हुमायूं का मकबरा

हुमायूं का मकबरा मथुरा रोड पर लोदी रोड के साथ बने चौराहे के समीप स्थित है। अनगढ़े पत्थरों से निर्मित ऊंची दीवारें एक चौकोर बाग को घेरती हैं जो प्रारम्भ में पक्के रास्तों और नहरों द्वारा अलग किए गए चार बड़े-बड़े हिस्सों में विभाजित हैं और प्रत्येक चौक फिर चौकोर छोटे हिस्सों में विशिष्ट मुगल बाग के समान चौकोर मार्गों (चहार बाग) द्वारा विभाजित है। यह ऊंचा मकबरा अहाते के बीच में स्थित है और यह कोठरियों की शृंखला के साथ सामने बने मेहराबी खुले दरवाजों वाले चबूतरे से ऊपर उठता है (फलक 1) जिसके बीच में एक अष्ट-भुजाकार कक्ष में स्मारक है जो विकर्णों पर अष्टभुजाकार कक्षों और बगलों की ओर मेहराबी प्रकोष्ठों से घिरा हुआ है। मेहराबों के खुले भाग पत्थर के परदों से बन्द किए गए हैं। प्रत्येक दिशा में तीन-तीन प्रमुख सुस्पष्ट मेहराब हैं जिनमें से बीच की मेहराब सबसे ऊंची है। इसी नक्शे को दूसरी मंजिल पर भी दुहराया गया है और यहां भी छत संगमरमर के दुहरे 42.5 मीटर ऊंचे गुम्बद द्वारा ढकी है जिसके आस-पास स्तम्भयुक्त छतरियां बनी हुई हैं। यह इमारत लाल बलुआ पत्थर की बनी है परन्तु सफेद और काले संगमरमर का प्रयोग नीरसता को दूर करने के लिए किया गया है। किनारों पर ज्यादातर काले संगमरमर का प्रयोग किया गया है।

इस मकबरे को हुमायूं की बड़ी रानी तथा विधवा बेगा बेगम ने बनवाया था जो हाजी बेगम के नाम से लोकप्रिय थी। कुछ लोगों के अनुसार यह

उसने हुमायूं की मृत्यु के नौ साल बाद सन् 1565 में बनवाया था परन्तु अठाहरवीं सदी की एक पांडुलिपि के एक उद्धरण के अनुसार हुमायूं की मृत्यु के चौदह साल बाद बनवाया गया था। ऊंचे मेहराबों और दुहरे गुम्बद सहित यह विशिष्ट मुगल वास्तुकला का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है जो कि भारत में पहली बार यहां पायी जाती है। हालांकि कुछ मकबरे बगीचों के बीच पहले भी तैयार किये गए (पृष्ठ 92, 109) थे, यह बाग युक्त मकबरे के निर्माण का भी पहला उदाहरण है जो आगरा के ताजमहल में पराकाष्ठा पर पहुंचा।

इस अहाते में दो ऊंचे दुमंजिले प्रवेश द्वारों से दाखिल हुआ जाता है जिनमें से एक प्रवेश द्वार पश्चिम की ओर है और दूसरा दक्षिण में है, परन्तु अब दूसरा बन्द रहता है। इस अहाते की पूर्वी दीवार के बीच में एक बारादरी और एक स्नानकक्ष उत्तरी दीवार में है।

मुगल वंश के अनेक शासक इस मकबरे में दफन किए गए हैं, हालांकि इनकी कब्रें पहचानना सम्भव नहीं है। जो यहां दफन किए गए हैं उनमें बेगा बेगम, हमीदा बानू बेगम, हुमायूं की छोटी बेगम, शाहजहां का पुत्र दारा शिकोह, और बाद के मुगल जहांदार शाह, फर्रुखसियर, रफीउद्दरजात, रफीउद्दौला और आलमगीर द्वितीय हैं। बहादुर शाह द्वितीय दिल्ली का अन्तिम मुगल बादशाह था जिसने प्रथम स्वाधीनता संग्राम के दौरान तीन शहजादों के साथ इसी मकबरे में शरण ली थी और लेफ्टीनेंट हडसन द्वारा 1857 में यहां उसे पकड़ा गया था।

(ख) नाई का मकबरा

हुमायूं के मकबरे के अहाते के भीतर उसके दक्षिण-पूर्व की ओर एक दुहरे गुम्बद सहित एक भव्य चौकोर मकबरा स्थित है। यह पता नहीं कि इसके भीतर कौन दफन है, हालांकि सामान्य तौर पर इस का उल्लेख नाई के मकबरे के रूप में किया जाता है। इसके भीतर दो कब्रें है जिन पर कुरान

की आयतें उत्कीर्ण हैं। इन कब्रों में से एक पर 999 का अंक खुदा हुआ है जोकि सन् 1590-91 के अनुरूप हिजरी वर्ष हो सकता है।

(ग) नीला-गुम्बद

दक्षिण-पूर्वी किनारे पर हुमायूं के मकबरे के बाहर नीले टाइलों से ढका हुआ पलस्तर युक्त पत्थर का एक भव्य मकबरा है। बाहर की ओर अष्टभुजाकार परन्तु अन्दर से चौकोर इस मकबरे की अन्दरूनी छत रंगीन और उत्कीर्ण पलस्तर द्वारा बहुत ही अलंकृत है। इसकी ऊंची ढोल और एक दुहरे गुम्बद जो इस काल के निर्माण में सामान्य था का अभाव इसे एक अभूतपूर्व निर्माण कार्य बतलाता है। इसके ढोल के आस-पास अपनी सामान्य रंगीन आकृति के अनुरूप अन्य रंगों के टाइलों के चिह्न हैं। यह माना जाता है कि नीला गुम्बद के नाम से प्रसिद्ध इसे अब्दुर्रहीम खां खान-ए-खानां ने सन् 1625 में बनवाया था और यह कहा जाता है कि उसमें उसके एक वफादार परिचारक फहीम खां के अवशेष हैं यद्यपि इस बात के भी कुछ संकेत हैं कि यह मकबरा हुमायूं के मकबरे के निर्माण से पहले भी मौजूद था और इसलिए इसमें अन्य व्यक्ति के अवशेष हो सकते हैं।

(घ) चिल्ला-निज़ामुद्दीन औलिया

हुमायूं के मकबरे के उत्तर- पूर्वी कोने के बाहर बरामदों सहित कुछ कमरों के अवशेष हैं। यह माना जाता है कि इस स्थान का इस्तेमाल शेख निज़ामुद्दीन औलिया द्वारा किया जाता था, जिनका देहान्त सन् 1325 में हुआ था और जिनकी दरगाह का उल्लेख अन्यत्र (पृष्ठ 113) किया गया है। हालांकि पास में एक दोमंजिली इमारत के निर्माण- संबंधी विशेषताएं उसके निर्माण को हुमायूं या अकबर के शासन काल के होने का संकेत करती हैं।

(ङ) अरब-सराय

हुमायूं के मकबरे के दक्षिण-पश्चिमी कोने से सटा हुआ एक बड़ा अहाता अरब-सराय है। इसके बीच में एक प्रवेश द्वार है और कक्षों की शृंखलाओं द्वारा यह दो प्रांगणों में विभाजित है। पश्चिमी अहाते में अब औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान (इंडस्ट्रियल ट्रेनिंग इन्स्टीट्यूट) है। पूर्व की ओर से एक प्रवेश द्वार द्वारा पहुंचने पर इसके ऊंचे पूर्वी प्रवेश द्वार के बिल्कुल बाहर जिसके निचले किनारे पर चित्रों के चिह्न है एक दूसरा प्रांगण है जो प्रारम्भ में मेहराबी कक्षों से घिरा हुआ था जोकि मंडी (बाजार) कहलाता है इसे जहांगीर के मुख्य हिजड़े मिहिर बानू-आगा ने बनवाया था। अरब सराय का उत्तरी फाटक बू-हलीमा के बगीचे के पूर्वी फाटक के बिल्कुल दाहिनी ओर है।

यह कहा जाता है कि बेगा बेगम या हाजी बेगम ने अरब सराय का निर्माण तीन सौ अरब मुल्लाओं के लिए करवाया था जिन्हें वह मक्का से लाई थी। परन्तु कुछ लोग यह आशंका व्यक्त करते है कि "अरब सराय" संभवत: एक मिथ्या नाम होगा और शायद इस अहाते में उन फारसी (अरब नहीं) कामगारों और शिल्पियों को रखा गया था जो हुमायूं का मकबरा बनाने के काम में लगाए गए थे।

(च) अफसर वाला मस्जिद और मकबरा

अरब सराय के पूर्वी अहाते के भीतर एक उठे हुए चबूतरे पर एक मस्जिद स्थित है। इसके प्रार्थना कक्ष के सामने के हिस्से में तीन मेहराबी द्वार हैं, बीच के कक्ष पर एक गुम्बद की छत है। इस मस्जिद की सिधाई में उसके उत्तर की ओर एक लम्बा जीर्ण-शीर्ण कक्ष मेहराबी द्वारों सहित है। इसी उठे हुए चबूतरे पर मस्जिद के दक्षिण-पूर्वी कोने में दुहरे गुम्बद का

एक अष्टभुजाकार मकबरा है। यह मकबरा और मस्जिद अफसर वाला के नाम से विख्यात है। जिस अफसर या अधिकारी ने इन इमारतों को बनवाया था उसकी पहचान नहीं हो पाई है। इस मकबरे के भीतर की कब्रों में से एक पर 974 अंक लिखा है जो हिजरी वर्ष का संकेत करता है और वह सन् 1566-67 के समानुरूप है। मस्जिद और मकबरा ये दोनों लगभग उसी समय बनाए गए होंगे।

(ड) बू-हलीमा का बाग

जैसे ही दर्शक मथुरा रोड से हुमायूं के मकबरे की ओर पहुंचता है वह एक आयताकार अहाते से गुजरता है जिसके उत्तरी आधे भाग में एक मकबरा और इसके पूर्व में एक प्रवेश द्वार है जो कि उसी सिधाई में है जोकि हुमायूं के मकबरे के मुख्य प्रवेश द्वार की है। चूंकि अरब सराय की उत्तरी दीवार इस बगीचे के पूर्वी अहाते के पलस्तर किए गए बाहरी हिस्से से सटी हुई है इसलिए शायद यह अरब सराय से पहले रही होगी, जिसे हुमायूं की बड़ी (वरिष्ठ) बेवा बेगम ने बनवाया था। यह बाग बू-हलीमा का बाग कहलाता है और यह विश्वास किया जाता है कि कोई अनजान महिला उपर्युक्त मकबरे में दफन की गयी थी। रंगीन टाइलों के चिह्न हुमायूं मकबरे की तरफ मुखवाले प्रवेश द्वार पर आज भी मौजूद हैं और जिन्हें बलुआ पत्थर के साथ इस्तेमाल करके बनाया गया है और दोनों ही पलस्तर में सेट किए गए हैं जो इसे चित्रमय मनोहरता प्रदान करते हैं परन्तु यह सन्देहास्पद है कि यदि यह बाग प्रारम्भ में इस मकबरे के लिए तैयार किया गया था तो यह मकबरा बगीचे के बीच में नहीं है जैसा कि बगीचे-युक्त मकबरों में होता है।

(ज) ईसा खां का मकबरा

ईसा खां का मकबरा (फलक 11 ख) बू हलीमा के बाग के दक्षिण में बिल्कुल उसके पास है। उसके अष्टभुजाकार अहाते का बाग जिसके उत्तर में प्रवेश द्वार है उसके बीच में मकबरा है, जैसा कि मुबारक शाह के मकबरे में हैं (पृष्ठ 85)। बरामदों द्वारा घिरे हुए बीच के अष्टभुजाकार कक्ष की प्रत्येक दिशा में तीन-तीन मेहराबी दरवाजे हैं और यह मकबरा एक निचली कुरसी से ऊपर उठता है और एक बौनी (छोटी) दीवार से घिरा हुआ है। मेहराबों के ऊपर एक छज्जा निकलता है और छत की प्रत्येक दिशा में एक गुम्बदयुक्त छतरी है, उसके बीच का गुम्बद बत्तीस किनारों वाले ढोल से ऊपर उठता है, पश्चिम और दक्षिण दिशाओं को छोड़कर इस कक्ष की दोनों बगलें पत्थर की जालियों से बन्द की गई है। पश्चिमी दिशा में अन्दर की ओर एक मिहराब है जबकि दक्षिण दिशा में मुख्य द्वार है। इस अष्टभुजाकार अहाते के पश्चिमी भाग से एक तीन गुम्बदवाली मस्जिद बाहर की ओर निकली नजर आती है। इस प्रकार इसमें लोदी काल के मकबरों का अष्टभुजाकार विशिष्ट नमूना अपनाया गया है।

ईसा खां शेरशाह सूर (1539-45) और उसके बेटे इस्लाम शाह (1545-54) के दरबार का उमराव था। मेहराब पर एक अभिलेख है जिस पर 954 हिजरी (सन् 1547-48) लिखा हुआ है।

(झ) बड़ा-बताशेवाला-महल

हुमायूं के मकबरे के उत्तर में एक अहाते के भीतर, जो अब भारत स्काउट्स एण्ड गाइड्स के अधीन है, कुछ संस्मारक हैं। इनमें से सब से बड़ा, जो बड़ा-बताशेवाला-महल के रूप में विख्यात है, एक उठे हुए चबूतरे पर खड़ा है जिसकी प्रत्येक दिशा में पांच-पांच मेहराबें हैं और मध्य में एक

मेहराबी छत का कमरा है। प्रारम्भ में यह दीवारयुक्त अहाते द्वारा घिरा हुआ था जो अब नष्ट हो गया है।

मध्य कक्ष के प्रवेश द्वार के ऊपर एक अभिलेख है जिससे हमें यह पता चलता है कि यहां 1012 हिजरी (सन् 1603) में मिर्ज़ा मुज़फ्फर को दफन किया गया था। मिर्ज़ा मुज़फ्फर हुसैन, जिसका दादा खुरासान से बाबर के दरबार में आया था, गुलरुख बेगम का बेटा था जो हुमायूं के भाई मिर्जा कामरान की बेटी थी। उसका विवाह अकबर की सबसे बड़ी बेटी सुल्तान खानम से हुआ था।

बड़ा-बताशेवाला-महल से लगभग 40 मीटर पूर्व में उसके मूल अहाते के भीतर अनगढ़े पत्थरों से निर्मित एक मध्य कक्ष सहित दूसरा मकबरा है जो भीतर से चौकोर और बाहर से अष्टभुजाकार है तथा अन्दर की ओर बेलबूटे, ज्यामितीय और उत्कीर्ण पलस्तर में लेखीय सजावट की गई है। यह छोटा-बताशेवाला-महल कहलाता है। इस मकबरे में जो व्यक्ति दफन है उसका कोई पता नहीं है।

(ञ) सब्ज़-बुर्ज

चार चौड़ी और चार तंग बगलोंवाला (मुसम्मने बग़दादी) यह अष्टभुजाकार मकबरा हुमायूं के मकबरे के पश्चिम में मथुरा रोड और लोदी रोड के चौराहे के गोल चक्कर पर स्थित है। इसकी सभी बगलों में ऊंची-ऊंची गहरी खुली मेहराबें है और एक ऊंचे ढोल पर दुहरा गुम्बद है जो रंगीन टाइलों से ढका है जिसके कारण उसका यह वर्तमान नाम अर्थात् "हरा गुम्बद" मिला। वास्तुकला की दृष्टि से गुलदस्ते, छज्जे और छतरियों जैसे पूर्व-मुगल विशेषताओं से रहित यह इमारत मध्य एशिया की परम्परा में है और इसे प्रारम्भिक मुगलकाल में रखा जा सकता है। पहिये के आकार वाली योजना पर आधारित एक दूसरे को काटती हुई दीवारों और ऊपरी

गुम्बद में सुरक्षित लकड़ी की शहतीरों सहित यह अपने निर्माण के तरीकों के कुछ सूत्र अभी भी रखे हुए है।

(ट) नीली-छतरी

नीली-छतरी मथुरा रोड पर दिल्ली पब्लिक स्कूल के अहाते में है और रूपरेखा में अष्टभुजाकार है। यह इमारत एक ऊंचे उठे हुए चबूतरे पर खड़ी थी और प्रारम्भ में एक दीवार से घिरी हुई थी। उसके बाहरी अग्रभागों को अनेक रंगों की मीनाकारी किए गए टाइलों द्वारा शानदार ढंग से मूल रूप में अलंकृत किया गया था परन्तु सम्पूर्ण ढांचे को अब नष्ट कर दिया गया है। यह विश्वास किया जाता है कि यह अकबर के दरबार के उमराव नौबत खां का मकबरा है।

37. सुन्दर बाग नर्सरी क्षेत्र

(क) सुन्दरवाला-महल और बुर्ज

वर्तमान सुन्दर-बाग नर्सरी क्षेत्र के भीतर प्रारंभ में एक बड़ा अहाता था जिसमें एक ऊंचे प्रवेश द्वार के माध्यम से प्रवेश किया जाता था। इसके पूर्वी भाग में अनगढ़े पत्थरों से निर्मित एक मकबरा है, जो तिरछी बगलों के कोनों सहित एक गुम्बद से आच्छादित रूपरेखा के अन्तर्गत आयताकार है। इसके कक्ष तक बरामदे के द्वारा पहुंचा जा सकता है जिसकी चारों दिशाओं में से प्रत्येक में पांच-पांच मेहराबें हैं। बीच के कक्ष के नीचे एक भूमिगत कक्ष है जिसमें अवश्य ही एक कब्र रही होगी। अन्दर की ओर पर्याप्त रूप से पलस्तर की सजावट है जो अब खराब हो गई है।

यह सुन्दर-महल या सुन्दरवाला-महल कहलाता है। एक गुम्बदयुक्त चौकोर मकबरा जो अपने अन्दर की ओर उत्कीर्ण पलस्तर द्वारा शानदार

ढंग से सजाया गया है, इस अहाते के पश्चिमी भाग में स्थित है और यह सुन्दर-बुर्ज कहलाता है। यह स्मारक प्रारंभिक मुगल काल का है परन्तु इसमें कौन दफन है इसकी कोई जानकारी नहीं है।

(ख) लक्कड़वाला-बुर्ज

सुन्दर-बुर्ज के उत्तर-पश्चिम में सुन्दर-बाग नर्सरी के जरिए अनगढ़े पत्थरों से निर्मित चौकोर मकबरा, जो एक चबूतरे पर खड़ा है, तक पहुंचा जाता है, इस मकबरे का भीतरी हिस्सा वनस्पतियों तथा अभिलिखित अभिप्रायों द्वारा उत्कीर्ण पलस्तर में शानदार ढंग से अलंकृत किया गया है। जो व्यक्ति इसमें दफन है उसकी कोई जानकारी नहीं है।

38. निज़ामुद्दीन

(क) हजरत निज़ामुद्दीन की दरगाह

शेख निज़ामुद्दीन का जन्म सन् 1236 में बदायूं में हुआ था। उनके पिता की मृत्यु उस समय हुई जब वे 5 वर्ष के थे और वे अपनी मां के साथ दिल्ली चले आए। बाद में वे प्रसिद्ध फकीर शेख-फरीद शकरगंज के शिष्य बन गये जिन्होंने उन्हें अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। अलाउद्दीन खलजी (1296-1316) और मुहम्मद तुगलक (1325-51) ये दोनों उनके भक्त थे। इन्होंने भविष्यवाणी की थी कि गयासुद्दीन तुगलक, जो उस समय बंगाल में था, फिर कभी दिल्ली नहीं देखेगा और उनकी भविष्यवाणी सही निकली क्योंकि सुल्तान दिल्ली से करीब 6 किलोमीटर दूर दक्षिण में एक अस्थायी इमारत में मर गया।

हजरत निजामुद्दीन का देहान्त सन् 1325 में हुआ। उनका मूल मकबरा अब मौजूद नहीं है। इस मकबरे की मरम्मत फिरोजशाह तुगलक (1351-88) ने करवाई और अलंकृत करवाया था। परन्तु मरम्मत की गई इमारत भी नष्ट हो गई। वर्तमान इमारत को एक ऊंचे ओहदे वाले उमराव फरीदुन खां ने 970 हिजरी (सन् 1562-63) में बनवाया था और अनेक व्यक्तियों द्वारा बाद में इसमें वृद्धि की गई या इसकी मरम्मत करवाई गयी। इसमें बरामदों द्वारा घिरा हुआ एक चौकोर कक्ष है जिसमें मेहराबी द्वार हैं जबकि इसकी छत एक अष्टभुजाकार ढोल से निकलते हुए एक गुम्बद द्वारा आच्छादित है। यह गुम्बद काले संगमरमर की खड़ी धारियों से अलंकृत है और इसके शिखर पर एक कमल किरीट है। इस मकबरे के आसपास का क्षेत्र पवित्र माना जाता है। इसके परिणाम-स्वरूप बहुत से व्यक्ति जिनमें शाही खानदान वाले भी शामिल हैं। यहां दफन किए गए हैं। साल में दो बार यानी हजरत निजामुद्दीन औलिया और अमीर खुसरो की बरसियों पर एक मेला (उर्स) यहां लगता है जब यह सारा क्षेत्र सम्पूर्ण भारत से आए हुए यात्रियों से जीवन्त हो उठता है।

(ख) दरगाह में अन्य स्मारक

हजरत निजामुद्दीन के मकबरे के पश्चिम में आयताकार जमातखाना मस्जिद स्थित है जिस पर लाल बलुए पत्थर की परत चढ़ी हुई है। इसके तीन खंड हैं जिनमें से प्रत्येक पर एक निचला गुम्बद है परन्तु उनमें बीच वाला ऊंचा है और उसकी मेहराबें कमल की कली के झब्बों से सजाई गई हैं जो अलाई दरवाजा (पृष्ठ 57) की विशेषताओं की याद दिलाती हैं। इस मस्जिद को अलाउद्दीन खलजी के बेटे खिजखां ने सन् 1325 में बनवाया था और यह इस क्षेत्र में सबसे पुरानी इमारत है। खिजखां अमीर खुसरो की प्रेम कविताओं में से एक कविता का नायक है।

इस दरगाह के अहाते के उत्तरी फाटक पर एक बड़ी बावली (सीढ़ियों वाला कुआं) है जो इन फकीर के अनुयायियों द्वारा पवित्र मानी जाती है। यह कहा जाता है कि इस बावली का जिस समय निर्माण हो रहा था ग्यासुद्दीन तुगलकाबाद का निर्माण करने में व्यस्त था और उसने कारीगरों को और कहीं काम करने से मना कर दिया था। परन्तु वे रात में इस फकीर के लिए काम करते थे और जब बादशाह ने तेल बेचने की मुमानियत कर दी ताकि वे रात में काम न कर सकें तो उन्होंने तेल की जगह इस बावली के पानी का इस्तेमाल किया और इसके पानी ने तेल के समान काम किया।

इस बावली की पश्चिमी दीवार की ओर "चीनी का बुर्ज" नाम की एक मस्जिद है जिसमें तीन कक्ष हैं जिनमें से प्रत्येक में एक मेहराबयुक्त द्वार है। इसकी छत पर एक गुम्बदयुक्त कक्ष में पलस्तर में उत्कीर्ण लेख इतना खंडित है कि कुछ भी समझ में नहीं आता। परन्तु स्पष्ट है कि इस इमारत को लोदी काल में बनवाया गया था। इसके ऊपरी कक्ष के अन्दरूनी हिस्से में रंगीन टाइलों और उत्कीर्ण पलस्तर के शानदार अलंकरणों के कारण इसे इसका वर्तमान नाम चीनी का बुर्ज अर्थात् "टाइलों का बुर्ज" दिया गया है। उसी बावली के किनारे एक मेहराबी छत और तीन मेहराबयुक्त प्रवेश द्वारों सहित एक छोटा संगमरमर का मंडप है। यह बाई कोदलदाई के मकबरे के नामसे विख्यात है परन्तु यह पता नहीं कि यह महिला कौन थी।

शेख निजामुद्दीन के मकबरे के दक्षिण में जालीदार संगमरमर के परदों सहित एक बिना छत का घेरा है जिसमें शाहजहां की बड़ी बेटी जहांआरा की कब्र है। इस कब्र के खोखले ऊपरी भाग पर घास रहती है उस पर अंकित मर्मस्पर्शी लेख के अनुरूप ही जिसका अर्थ है "सिवाय हरी घास के मेरी कब्र को किसी भी चीज से न ढका जाए, क्योंकि केवल घास ही इस दीन की कब्र ढकने के लिए काफी है।" मुहम्मद शाह (1719-48) का मकबरा भी जहांआरा के मकबरे के समान एक छोटे अहाते के भीतर है।

अकबर द्वितीय (1806-37) का सबसे बड़ा पुत्र मिर्जा जहांगीर भी एक अहाते में यहां दफन है।

उपर्युक्त मकबरों के दक्षिण में अमीर खुसरो का मकबरा है जिस पर अनेक समयों के अभिलेख हैं। अमीर खुसरो शेख निजामुद्दीन औलिया का मुख्य शिष्य था जिसे अनेक शासकों का संरक्षण प्राप्त था। वह एक माना हुआ फकीर और कवि था।

(ग) काली या कलां - मस्जिद

निजामुद्दीन गांव की पूर्वी परिधि पर काली या कलां मस्जिद है जिसे फिरोजशाह तुगलक (1351-88) के वजीरे-आजम खाने-जहां जूनां शाह ने बनवाया था। उसके द्वारा निर्मित मानी जाने वाली सात मस्जिदों में से यह भी एक है (पृष्ठ 27)। अनगढ़े पत्थरों से निर्मित यह एक विस्तृत इमारत है। प्रारम्भ में खिड़की मस्जिद के समान इसका आंगन आंशिक रूप से ढका हुआ था और आंशिक रूप से बिना ढका हुआ था (पृष्ठ 74)। इसके पूर्वी द्वार पर एक अभिलेख है जिसमें यह जिक्र है कि खाने-जहां के बेटे जूनांशाह जिसकी उपाधि खानेजहां थी, ने इसे 772 हिजरी (1370-71) में बनवाया था।

(घ) खाने-जहां तिलंगानी का मकबरा

इस गांव के उत्तर-पश्चिमी कोने में फिरोजशाह तुगलक (1351-88) के वजीरे-आजम खाने-जहां तिलंगानी का मकबरा है जिसका असली नाम खाने-जहां मकबूल खां था (पृष्ठ 27)। उसके मध्य में अष्टभुजाकार कक्ष है जो एक बरामदे से घिरा हुआ है और एक गुम्बद से ढका हुआ है। इसकी प्रत्येक दिशा में तीन-तीन मेहराबी दरवाजे हैं। हालांकि अब यह एक जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है परन्तु वास्तुकला की दृष्टि से दिल्ली में पहला

अष्टभुजाकार मकबरा होने से (पृष्ठ 27) इसका मकबरों के विकास में महत्वपूर्ण स्थान है।

(ङ) अतगा खां का मकबरा

निज़ामुद्दीन गांव की उत्तरी परिधि में एक दीवार वाले अहाते के भीतर लाल बलुआ पत्थर से निर्मित एक छोटा मकबरा है। इसकी चारों दिशाओं में गहरी कोटरिका युक्त मेहराबें हैं जिनमें खुले द्वार हैं और इसके लाल बलुआ पत्थर के सामने संगमरमर और रंगीन टाइलों का बहुत घना जड़ाऊ काम है। इसका अन्दरूनी हिस्सा चित्रमय पलस्तर से अलंकृत किया गया था जिसमें से ज्यादातर अब निकल चुका है। इसके अहाते की पश्चिमी दीवार पर रंगीन टाइल भी लगाए गए हैं जिसमें गहरी मेहराबें हैं। यद्यपि आकार में यह छोटा तथा नाप में 6 मीटर वर्ग है फिर भी यह वास्तव में वास्तुकला का एक रत्न है। अतगा खां अकबर की एक धाय जीजी अंगा का पति था और राजदरबार में उसे महत्वपूर्ण पद प्राप्त थे। सन् 1562 में अकबर की दूसरी धाय माहम अंगा के पुत्र अधम खां ने उसे मार डाला। इस मकबरे के दक्षिणी दरवाजे पर अंकित अभिलेख में यह उल्लेख है कि इसे 974 हिजरी (1566-67) में तैयार कर दिया गया था।

(च) चौंसठ-खम्बा

अतगाखां के मकबरे से थोड़ी दूर पर ही इसके पूर्व में चौंसठ खम्बा है जो चौंसठ स्तम्भों सहित संगमरमर का एक मंडप है। इसमें अनेक कब्रें हैं जिनमें अतगा खां के बेटे मिर्ज़ा अजीज कोकलताश की भी कब्र है। प्रारम्भ में यह एक हॉल के रूप में निर्मित था जो शायद बाद में एक मकबरे में बदल दिया गया होगा। यह एक अहाते की दीवार से घिरा हुआ है परन्तु इसे अहाते के ऊंचे पश्चिमी भाग के भीतर निर्मित किया गया है। इसकी मुख्य

कब्र अभिलिखित है और इस पर 1033 हिजरी (सन् 1623 -24) का समय लिखा है।

(छ) गालिब का मकबरा

चौसठ खम्बा के अहाते के बाहर उत्तर में प्रसिद्ध कवि मिर्ज़ा गालिब (1796-1869) की कब्र है। हाल के वर्षों में इस कब्र को एक छोटी संगमरमर की संरचना से ढक दिया गया है और यह एक चहार दीवारी से घिरी हुई है।

(ज) बारा-खम्बा

निज़ामुद्दीन गांव के उत्तर में एक बड़ी चौकोर इमारत है जिसकी प्रत्येक दिशा में तीन-तीन मेहराबें है और इसके मध्य में कक्ष है और यह बारह स्तम्भों पर आधारित है जिसके कारण उसे इसका वर्तमान नाम अर्थात् 'बारह-स्तम्भ' मिला है। मध्य-कक्ष के चारों तरफ एक बरामदा है। लगता है कि प्रारम्भ में वह एक मकबरा रहा होगा और जो व्यक्ति इसमें दफन है उसकी पहचान नहीं हो पायी है।

(झ) लाल-महल

चौसठ खम्बा के बाहर एक लाल बलुआ पत्थर की इमारत जो किसी के निजी कब्ज़े में है और जिसकी पर्याप्त रूप से मरम्मत कर दी गई है, ध्यान आकर्षित करती है। "लाल-महल" के नाम से विख्यात इसके मध्य में एक गुम्बदयुक्त कक्ष है जिसकी सभी दिशाओं में बरामदे है। इन बरामदों की एक चपटी छत है जो स्तम्भों और सरदलों पर टिकी हुई है। कभी-कभी

इसकी कुश्के-लाल (लाल महल) से पहचान की जाती है जिसे गयासुद्दीन बलबन (1266-86) ने बनवाया था, परन्तु इसका पता नहीं चल पाया है।

(अ) खाने-खानां का मकबरा

अब्दुर्-रहीम खान जिन्हें खाने-खानां की उपाधि प्राप्त थी, का मकबरा निजामुद्दीन के सामने मथुरा रोड के पूर्व में है। यह एक विशाल चौकोर इमारत है जो मेहराबी कोठरियों वाले एक ऊंचे चबूतरे पर स्थित है (फलक 20ख)। दुमंजिली तथा प्रत्येक दिशा में एक ऊंचे और गहरे मध्यवर्ती मेहराबों सहित और प्रत्येक मंजिल में पार्श्व भागों की ओर अनेक उथले मेहराबों युक्त इस इमारत में हुमायूं के मकबरे के नमूने को अपनाया गया है। इस मकबरे के अन्दर का हिस्सा विशेष रूप से अन्दरूनी छतों पर सुन्दर डिज़ाइनों सहित उत्कीर्ण और चित्रमय पलस्तर से अलंकृत किया गया है। बीच के दुहरे गुम्बद के आस-पास कोनों में छतरियां और बगलों के मध्य में दालान (खुले हाल) तैयार किए गए हैं। लाल बलुआ पत्थर, संगमरमर और अन्य पत्थर, जो प्रारम्भ में इसके सामने लगे थे, बाद में हटा दिए गए और उन्हें सफदरजंग के मकबरे में इस्तेमाल कर लिया गया (पृष्ठ 89)। अब्दुर् - रहीम खान खाने-खानां अकबर के प्रतिशासक (संरक्षक) बैरम खां का बेटा था जिसने अकबर और जहांगीर दोनों की सेवाएं की थीं। वह अनेक भाषाएं जानता था और उसने रहीम के प्रसिद्ध नाम से हिन्दी में दोहों की रचना की थी। उसकी मृत्यु सन् 1626-27 में हुई।

(ब) बारापुला

खाने-खानां के मकबरे से 1 किलोमीटर पूर्व में पुरानी मथुरा रोड पर बारापुला एक पुल है। इसमें ग्यारह मेहराब युक्त जल-द्वार हैं परन्तु लगता है कि बारह खम्भों के कारण उसे यह नाम मिला है (पृष्ठ 93)।

प्रत्येक खम्भे के ऊपर दो मीटर ऊंची एक-एक मीनार है। यह पुल 14 मीटर चौड़ा और 195 मीटर लम्बा है। इसके मेहराबों में से एक पर एक लेख था जो अब नहीं मिलता है जिसके अनुसार इसे जहांगीर के दरबार के मुख्य हिजड़े मिहिर बानू आगा ने हिजरी 1030 (1621-22) में बनवाया था।

39. लाल-बंगला

डॉक्टर ज़ाकिर हुसैन रोड (पुरानी वैलेज़ली रोड) पर दिल्ली गोल्फ क्लब के प्रवेश द्वार के समीप लाल बलुआ पत्थर के दो मकबरे हैं जिनके बीच में एक-एक चौकोर कमरा है, विकर्णों पर छोटे चौकोर कमरे है और उनके बीच में आयताकार हॉल है। इनमें से एक मकबरे में दो कब्रे है और यह विश्वास किया जाता है कि ये शाह आलम द्वितीय (1759-1806) की माता लाल कुंअर और उसकी बेटी बेगम जान की कब्रे हैं। प्रारम्भ में यहां एक दूसरा मकबरा मौजूद था जिसे बाद में गोल्फ क्लब द्वारा अपने इस्तेमाल के लिए बदल दिया गया है और ये सभी तीनों मकबरे एक चहार-दीवारी के भीतर घिरे हुए थे। यह बिल्कुल निश्चित नहीं है कि लाल कुंअर के नाम पर या इन भवनों में लाल बलुआ पत्थर के इस्तेमाल करने से इसे लाल बंगला नाम दे दिया गया।

40. पुराना-किला क्षेत्र

(क) पुराना - किला

पुराना-किला प्राचीन टीले पर स्थित है जिसमें शायद महाभारत के इन्द्रप्रस्थ नगर के खंडहर छिपे है (पृष्ठ 8)। शेरशाह सूर (1538-45) ने

दीनपनाह नगर को नष्ट कर दिया जिसे हुमायूं ने बनवाया था और उसी स्थल पर यह किला निर्मित करवाया जो विषमता के साथ आयताकार है। तल-संयोजन में इसके कोनों पर और पश्चिमी दीवार पर बुर्ज बने है। इसकी प्राचीरें लगभग 2 किलोमीटर के परिमाप में है। इसके उत्तर, दक्षिण और पश्चिम की ओर तीन द्‌वार है जिसमे पश्चिमी द्‌वार अब प्रवेश द्‌वार का काम दे रहा है। ये फाटक दुमंजिले है जो लाल बलुआ पत्थर के बने है और छतरियों द्वारा आच्छादित है। अन्दर की ओर प्राचीर के साथ दो खंडों की गहनता लिए कमरे है।

तीन मुख्य फाटकों में उत्तरी फाटक तलाकी दरवाजा (वर्जित फाटक) कहलाता है। कब और क्यों इसके जरिए प्रवेश की मनाही कर दी गई इसकी कोई जानकारी नहीं है। इसके सामने की ओर झरोखों के ऊपर एक आदमी के साथ युद्ध में लगे संगमरमर में उत्कीर्ण व्याल प्रदर्शित है। इस फाटक का बाहरी हिस्सा प्रारम्भ में रंगीन टाइलों से अलंकृत किया गया था और कमरे उत्कीर्ण पलस्तर के काम से सजाए गए थे। यह विश्वास किया जाता है कि शेरशाह पुराना किला पूरा नहीं करवा सका था और इसे हुमायूं ने पूरा करवाया था। स्याही से लिखी लिखावटों में जो इस फाटक के एक ताक में मौजूद थीं, हुमायूं का उल्लेख था और यह संम्भव है कि अगर इस फाटक का निर्माण हुमायूं ने नहीं करवाया था तो कम से कम उसके द्‌वारा इसकी मरम्मत करवायी गयी थी। दक्षिणी फाटक में, जो हुमायूं दरवाजा भी कहलाता है, इसी प्रकार का एक लेख था जिसमें शेरशाह का उल्लेख किया गया है और तिथि 950 हिजरी (1543-44) उल्लिखित है।

मूलतः पुराना किला यमुना के किनारे स्थित था। इस किले के उत्तरी और पश्चिमी किनारों पर भूमि का गहरा दबा होना यह संकेत देता है कि इन किनारों पर नदी से जुड़ी हुई एक चौड़ी खाई मौजूद थी और किले में मुख्य भूमि से किले को जोड़ने वाले एक उपसेतु के जरिए पहुचा जाता था।

(ख) उत्खनित स्थल

सन् 1955 में पुराने किले के दक्षिणी-पूर्वी भाग में परीक्षण के तौर पर खोदी गई कुछ खाइयों में बाद के कुछ स्मृतिचिह्न और अवशेषों के अलावा चित्रित भूरे रंग के बर्तनों के टुकड़े निकले। चूंकि ऐसे लक्षणों वाले बर्तन महाभारत की कहानी से सम्बद्ध अनेक स्थलों पर पहले भी पाये गए थे और इनका काल 1000 ईसा पूर्व निर्धारित किया गया था, इनके यहां से प्राप्त होने से महाभारत के प्रसिद्ध पाण्डवों की राजधानी इन्द्रप्रस्थ का पुराने किले के स्थल पर होने वाली परंपरा को बल मिला।

उत्खनन (फलक 21) 1969 में पूर्वी दीवार में जल द्वार तक जाने वाले रास्ते के पार्श्व के साथ-साथ फिर से प्रारम्भ किया गया और यह 1973 तक चलता रहा जिससे भूरे रंग के चित्रित बर्तन वाले लोगों की बस्ती का पता तो नहीं चला है परन्तु मौर्यकाल से लेकर प्रारंभिक मुगल काल तक का एक निरंतर स्तरविन्यास उभरकर आया है। परन्तु भूरे रंग के चित्रित बर्तनों के टुकड़े बाद के जमावों में छिट पुट निकले हैं। मौर्य काल (लगभग 300 ईसा पूर्व) का प्रमाण उत्तरी काले ओपदार बर्तनों की मौजूदगी से मिलता है, जो एक चमकदार सतह सहित एक उत्तम कठोर मिट्टी के बर्तन हैं तथा आहत सिक्कों, मानव और पशुओं की पक्की मिट्टी की लघु मूर्तियों, और उत्कीर्ण मिट्टी की मोहरों से भी यह प्रमाण मिलता है। पक्की मिट्टी के घेरे वाले सूखे कुएं और पकी ईंटें भी पाई गई हैं, हालांकि बहुत से आवास गारे से बनाई गई ईंटों अथवा टट्टर तथा लिपाई से बनाये जाते थे और इन्हें कभी-कभी लकड़ी के खंभों से भी सुदृढ़ किया जाता था।

ये उत्तरी काले ओपदार बर्तन सादे लाल बर्तनों सहित शुंग काल (200 से 100 ईसा पूर्व) में भी चलते रहे। मकान अधिकतर स्थानीय अनगढ़े पत्थर या अनगढ़े पत्थरों की नीवों के ऊपर मिट्टी से बनी ईंटों से बनाये जाते थे। फर्श कूट-कूट कर भरी गई मिट्टी या मिट्टी की ईंटों की

बनती थी। इस काल की कला की विशेषता, जिससे लोगों के धार्मिक विश्वास की झलक मिलती है, छोटे पकी मिट्टी के फलक हैं जिन पर अर्धदैवी शक्तियों (यक्ष और यक्षिणियों) का प्रतिरूपण किया गया है। इन स्तरों में मथुरा के राजाओं के लेखरहित ढाले हुए सिक्के और पकी मिट्टी की मोहरें भी मिलती हैं।

मुद्रांकित सजावट अगले शक-कुषाण काल (100 ईसा पूर्व से 300 ईसवी) के लाल मिट्टी के बर्तनों पर मिलती है। इस अवधि के काल-क्रम का पक्का प्रमाण यौधेय और कुषाणों के ताम्र सिक्कों से मिलता है। पकी ईंटों का बढ़ता हुआ प्रयोग इस काल में बस्ती के शहरीकरण का संकेत करता है।

आश्चर्यजनक रुप से इसके बाद के युग गुप्त काल (लग0 400 से 600) के स्तरों के अन्तर्गत जिन घरों का पता चलता है वे ईंट के टुकड़ों से बने थे। अग्रभाग पर एक धनुर्धारी की आकृति और पृष्ठ भाग पर 'श्री विक्रम' लेख सहित एक सोने की पत्तर चढ़े सिक्के से इस बात में सन्देह नहीं रह जाता कि यह गुप्त शासकों में से एक का है। अभिलिखित मोहरें और सुन्दर नमूनों की मानव लघु मूर्तियां इस काल की अन्य विशिष्ट वस्तुएं हैं। एक साधारण लाल मिट्टी का बर्तन, पकी मिट्टी की लघु मूर्तियां तथा सुन्दर टुकड़े परन्तु टूटे-फूटे पत्थर की मूर्ति के टुकड़े बताते हैं कि इस स्थल पर उत्तर गुप्त काल (लग0 700 से 800 ई.) में बस्ती थी।

राजपूत काल (लग0 900 से 1200) के अन्त में शायद इस शहर के आंशिक भाग को घेरने के लिए एक विशाल अनगढ़े पत्थरों की दीवार निर्मित की गई। हालांकि मकान अनगढ़े पत्थर, ईंटों के टुकड़ों और कच्ची ईंटों से बनाये जाते रहे। मिट्टी के पात्रों में परिवर्तन नहीं के बराबर हुआ। इन सतहों से "बैल और घुड़सवार" के किस्म के सिक्के, जिनमें सामन्तदेव के सिक्के भी शामिल हैं, मिले हैं।

इसके बाद आने वाले सल्तनत - शासन (1206-1526) के दौरान अनगढ़े पत्थरों और ईंट के टुकड़ों का सामान्य घरों के निर्माण में इस्तेमाल

किया जाता था। परन्तु इस काल में ग्लेज़ड बर्तनों का प्रचलन हुआ जो मध्य एशियाई साम्यता रखने वाले और स्थानीय निर्मित दोनों ही हैं। इन स्तरों से बलबन (1266-1286) और मुहम्मद बिन तुगलक (1325-51) के सिक्के निकले हैं। प्रारंभिक मुगल काल (1526-1556) की विशिष्ट और आकर्षक वस्तुएं, जो बाबर, सूर और हुमायूं के शासन का प्रतिनिधित्व करती है परित्यक्त टूटे-फूटे घरेलू पदार्थों के कचरे के ढेर से निकली है। इनमें अंडे के खोल के जैसे पतले भूरे बर्तन, ग्लेज़ड बर्तनों की तश्तरियां और चित्रित चीनी पोर्सिलेन के बर्तन, जिनके एक टुकड़े पर यह चीनी लेख "चेंग हुआ काल के मिंग राज वंश में निर्मित" (1465-87) अंकित है आते हैं। एक दूसरे टुकड़े पर चीनी कविता में एक परी की कहानी उत्कीर्ण की गई है। अन्य रुचिकर चीजों में कांच की बनी शराब की बोतलें, पन्नों और मोतियों से जड़ा सोने का कर्ण-वलय और आदिल शाह सूर (1552-53) का एक सिक्का शामिल है।

(ग) क़ला-ए-कुहना मस्जिद

पुराने किले के भीतर इस समय आज भी मौजूद इमारतों में 1541 में शेरशाह द्वारा निर्मित (फलक 18क) कला-ए-कुहना मस्जिद (पुराने किले की मस्जिद) है। इसका प्रार्थना कक्ष नाप में 51.20 मीटर और 14.90 मीटर है जिसके सामने घोड़े की नाल के आकार वाली मेहराबों सहित पांच द्वार हैं। दूसरों से अधिक ऊंची और एक प्रक्षेपण के भीतर तैयार की गई बीच की मेहराब की बगलों में तंग लम्बी धारियों वाले भित्तिस्तम्भ हैं। इस मेहराब की कोटरिकायुक्त सतह में एक द्वार है जिसे संगमरमर के और अन्य पत्थरों के जड़ाऊ काम से सुन्दर ढंग से अलंकृत किया गया है और इसमें इसकी चोटी पर एक छोटा झरोखा है। दोनों किनारों के दोनों मेहराब एक जैसे है किन्तु उनका अलंकरण कम किया गया है। कोनों के मेहराबों में लाल पत्थर की जगह सादा भूरा पत्थर इस्तेमाल

किया गया है। इस हॉल के भीतर की मिहराबें संकेंद्रित मेहराबों द्वारा शानदार ढंग से सजाई गई है जो अलंकरण मे वृद्धि कर देती हैं। पिछले दोनों कोनों पर दुमंजिले बुर्ज और झरोखे हैं। हॉल के दोनों कोनों से जीना दूसरी मंजिल पर एक तंग रास्ते तक जाता है। जो आयताकार हाल के चारों तरफ जाता है। इस हाल का बीच का खंड अपने दोनों किनारों पर छतरियों के निशानों सहित एक सुन्दर गुम्बद द्वारा आच्छादित है। मूलरूप से इसके आंगन में एक उथला तालाब मौजूद था जिसमें एक फव्वारा लगा था।

इस मस्जिद का मस्जिदों के विकास में एक महत्वपूर्ण स्थान है जो लोदी शैली से मुगल शैली में परिवर्तन की मिसाल है। पांच मेहराबों का अग्रभाग, पीछे की ओर मंडपयुक्त झरोखे और कोनों की मीनारें ऐसी विशेषताएं है जो प्राचीनतर मस्जिदों जैसे बड़ा-गुम्बद-मस्जिद (पृष्ठ 90) मोठ मस्जिद (पृष्ठ 77) और जमाली-कमाली-मस्जिद (पृष्ठ 65) से विकसित हुई हैं।

(घ) शेर-मण्डल

कला-ए-कुहना मस्जिद से दक्षिण की ओर लाल बलुआ पत्थर का दुमंजिला अष्टभुजाकार भवन है जिसे संगमरमर से उभारा गया है। इसके ऊपर अष्टभुजाकार मंडप या छतरी है। इसकी प्रत्येक बगल में मध्य मे एक कोटरिका युक्त मेहराब है। दूसरी मंजिल का मध्य कक्ष अपने चारों भागों में ताकों सहित क्रास के आकार का है। इसके अन्दरुनी निचले भागों (डैडोज) को चमकदार ग्लेज्ड टाइलों से सजाया गया है, जबकि ऊपर के भाग में उत्कीर्ण और चित्रित पलस्तर का काम है।

इस इमारत का क्या उद्देश्य था, यह निश्चित नहीं है। शायद शेरशाह ने इसे विलास के भवन के रूप में बनवाया होगा परन्तु यह विश्वास किया

जाता है कि हुमायूं द्वारा इसका पुस्तकालय के रूप में इस्तेमाल किया गया था जिसकी सीढ़ियों से वह गिर गया था और अन्ततः मर गया।

(ङ) खैर-उल-मनाज़िल मस्जिद

मथुरा रोड के दूसरी तरफ पुराने किले के सामने खैर-उल-मनाज़िल मस्जिद (घरों में सबसे शुभ) है जो अपने प्रार्थना कक्ष में पांच मेहराबी द्वारों सहित एक अनगढ़े पत्थर की इमारत है जिसमें दुमंजिले कोठे है और इसके पूर्व में लाल बलुआ पत्थर का एक भव्य-प्रवेश द्वार है। इस प्रार्थना कक्ष के मध्य खंड के ऊपर एक गुम्बद है, अन्य खंडों के ऊपर डाटदार छतें हैं। प्रारम्भ में इस प्रार्थना कक्ष के अग्रभाग को शानदार ढंग से रंगीन टाइलों से सजाया गया था। दो मंजिले गलियारे एक मदरसा के रूप में इस्तेमाल किए जाते थे।

इस प्रार्थना कक्ष के बीच की मिहराब के ऊपर अभिलेख है जिससे हमें यह जानकारी मिलती है कि इसे माहम अंगा ने अकबर के शासन काल में शिहाबुद्दीन अहमद खां की सहायता से बनवाया था।

यह मस्जिद सन् 1561 में बनवाई गई थी। माहम अंगा अकबर की धायों में से एक थी और उसका अकबर पर बड़ा प्रभाव था। उसका बेटा अधम खां एक उमराव और अकबर की फौज में सेनापति था जिसके मकबरे का वर्णन अन्यत्र किया गया है (पृष्ठ 60)। शिहाबुद्दीन अहमद खां, माहम अंगा का एक संबंधी और मित्र था और एक शक्तिशाली राजदरबारी था जो किसी समय दिल्ली के सूबेदार के पद पर रह चुका था।

(च) शेरशाह द्वार

खैर-उल-मनाज़िल मस्जिद के साथ उसके उत्तर की ओर एक दरवाजा है जिसके बारे में यह विश्वास किया जाता है कि यह दिल्ली के

विस्तृत शहर के प्रवेश द्वारों में से एक प्रवेश द्वार था जिसे शेरशाह ने बनवाया था और यह पुराने किले के नगर दुर्ग के सामने स्थित है। यह द्वार ऊपरी मंजिल में स्थानीय भूरे रंग के कुछ क्वार्टजाइट पत्थरों के साथ बड़े पैमाने पर लाल बलुआ पत्थर का इस्तेमाल करके बनाया गया है और इसीलिए यह लाल दरवाजा भी कहलाता है। लगता है कि बाद में इस द्वार से शहर तक छत्ताओं की व्यवस्था कक्षों की शृंखला के सामने बरामदे बनाकर की गयी थी जो संभवतः दुकानों के रूप में इस्तेमाल किए जाते थे। शेरशाह के इस विस्तृत शहर की परिधि पर दूसरे द्वार की पहचान काबुली या खूनी दरवाजा से की जाती है (पृष्ठ 130)।

41. अब्दुन्नबी की मस्जिद

तिलक-ब्रिज से लगभग 400 मीटर उत्तर में अब्दुन्नबी की मस्जिद स्थित है जिसका पिछवाड़ा मथुरा रोड की ओर है। यह एक अनगढ़े पत्थरों की इमारत है जिसमें एक प्रार्थना कक्ष है और जिसमें तीन मेहराबी दरवाजों के जरिए प्रवेश किया जाता है और इसके बीच के कमरे पर एक गुम्बद है। इसके आंगन की बगलों में, जो कोठे थे, वे अब नष्ट हो गए हैं। प्रारम्भ में इसके प्रार्थना कक्ष के मुख्य मेहराबी खंड के ऊपर एक अभिलेख था जिससे यह पता चलता है कि इसे 983 हिजरी (1575-76) में शेख अब्दुन्नबी ने बनवाया था। इस प्रार्थना कक्ष के अग्रभाग को प्रारम्भ में रंगीन टाइलों से सजाया गया था जो काफी हद तक अब समाप्त हो गए हैं। इस मस्जिद की मौलिक विशेषताओं का नवीनीकरण के दौरान नुकसान पहुंचा है।

अब्दुन्नबी सदर के पद पर था जो अकबर के शासन काल में एक प्रकार का मजहबी रजिस्ट्रार था और बादशाह का विश्वास पात्र था। बादशाह ने उसे गरीबों में पैसा बांटने के लिए मक्का भेजा था परन्तु अपनी वापसी पर वह उस पैसे का हिसाब नहीं दे पाया और उसे कैद में डाल दिया गया और (1584-85) में मरवा दिया गया।

42. कोटला फिरोजशाह

(क) प्राचीरें और फाटक

समकालीन इतिहासकारों के अनुसार दिल्ली के पांचवें शहर फिरोजाबाद का निर्माण फिरोजशाह तुगलक (1351–88) ने करवाया था, जो हौजखास से उत्तर में पीर गायब (पृष्ठ 133) तक फैला हुआ था हालांकि इतने आकार की बड़ी शहरी दीवार के अवशेषों के होने का कोई पता नहीं चल पाया है। उस समय यमुना के किनारे के साथ-साथ स्थित और अब शाहजहांनाबाद के दिल्ली गेट के बाहर मथुरा रोड पर स्थित कोटला फिरोजशाह इसके दुर्ग का काम देता था और यह कुश्के-फिरोज अर्थात् फिरोज का महल कहलाता था। इसमें तीन अनगढ़े पत्थरों से निर्मित दीवारों वाले आयताकार अहाते हैं जिनकी पूर्वी दीवार एक सीध में है। बीच का अहाता अन्य दो अहातों से बड़ा है, एक जो उत्तर में है और दूसरा जो दक्षिण में है, उनके पश्चिम में रुकावट आ गई है। उत्तरी अहाते का केवल आंशिक तौर पर पता चल सकता है जो काफी हद तक आधुनिक इमारतों से ढका हुआ है, दक्षिणी अहाता जिसका अब एक स्वतन्त्र प्रवेश द्वार है विक्रम नगर कॉलोनी को घेरता है।

पश्चिम की ओर से बीच के अहाते में मुख्य प्रवेश द्वार की बगल में दोनों ओर एक एक बुर्ज हैं और सामने की ओर अतिरिक्त किलेबन्दी थी। उत्तरी अहाते की ओर एक प्रवेश द्वार के अवशेष भी हैं, दक्षिणी अहाते की ओर से इसी प्रकार का प्रवेश द्वार बाद में बन्द कर दिया गया। इसके अतिरिक्त पूर्वी दीवार के ऊपर छत से अनेक सीढ़ियां नीचे की ओर पुरानी नदी के किनारे तक जाती थीं। कोनों में दी गई बुर्जों सहित इन प्राचीरों में तीर मारने के लिए छेद बने हैं। किन्तु तीरन्दाजों के खड़े होने के लिए चबूतरा नहीं है। यदि ऐसे चबूतरे रहे भी होंगे तो उन्हें बाद में हटा दिया गया होगा।

(ख) जामे-मस्जिद

दुर्ग के भीतर बाकी बची कुछ इमारतों में जामे-मस्जिद है जिसके उत्तर की ओर एक प्रवेश द्वार ऊंचाई पर है। यह निचली मंजिल के कक्षों की शृंखला के ऊपर बना हुआ है। इसके आंगन के कोठे और प्रार्थना कक्ष अब समाप्त हो गए है, केवल पश्चिमी भाग के पीछे की ओर एक दीवार बाकी बची है। तुगलकों के काल में जामे-मस्जिद, मस्जिदों में सबसे बड़ी एक मस्जिद थी। तैमूर ने जिक्र किया है कि अपनी इबादत के लिए वह इसमें गया था।

(ग) पिरामिडीय इमारत और अशोक का स्तम्भ

तीन मंजिलों में अनगढ़े पत्थरों से निर्मित एक ऊंची इमारत जो प्रत्येक मंजिल पर कम होती चली गयी है जामे-मस्जिद के उत्तर की ओर स्थित है (फलक 14 क) जिसमें मेहराब युक्त प्रवेश द्वारों सहित कक्ष है। इसकी ऊपरी छत पर अम्बाला जिले के टोपरा से लाया गया अशोक का स्तम्भ संस्थापित है जिसे फिरोजशाह ने लाकर यहां लगवाया था (पृष्ठ 26)। प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में इसे पत्थर की वेदिकाओं के बीच लगाया गया था। इस स्तम्भ पर अंकित अशोक की राजाज्ञाओं को सबसे पहले जेम्स प्रिन्सेप ने 1837 में पढ़ा था जिससे ब्राह्मी-लिपि के पढ़ने के लिए एक कुंजी मिल गई। दूसरा स्तम्भ, जिसे फिरोजशाह मेरठ के पास-पड़ोस से लाया था, रिज पर स्थित है (पृष्ठ 134)। समकालीन इतिहासकार उस जटिल कार्रवाई का वर्णन करते है, जो इन स्तम्भों को बहुत ज्यादा नुकसान पहुंचाये बिना नदी के जरिये दिल्ली लाने के लिए अपनाई गई।

(घ) अन्य स्मारक

समकालीन इतिहासकारों ने इस दुर्ग में अनेक महलों के होने का वर्णन किया है, पर इनमें से किसी की भी पहचान नहीं हो पाई है। जामे-मस्जिद के दक्षिण में अनेक इमारतों के अवशेष हैं जिनमें कबूतरों के लिए सूराखों सहित एक बुर्ज भी शामिल है। लगता है कि इनमें से कुछ रिहायशी थे। पिरामिडीय इमारत के उत्तर-पश्चिम में एक गोलाकार सुन्दर बावली है जिसमें भूमिगत कमरों की एक श्रृंखला है और उसके ऊपर एक लम्बी नाली है जो इसकी ऊपरी सतहों से पूर्व की ओर जाती है।

43. काबुली या खूनी दरवाजा

मौलाना आजाद मेडिकल कॉलेज के समीप सीधे मथुरा रोड पर एक दुमंजिला भव्य द्वार है जो ज्या दातर भूरे पत्थर से बना है और लाल पत्थर इसकी खिड़िकियों की चौखटों में इस्तेमाल किया गया है। यह विश्वास किया जाता है कि यह शेरशाह के दिल्ली (पृष्ठ 35) के फाटकों में से एक है हालांकि इसके साथ एक शहरी दीवार के अवशेष का सिलसिला नहीं मिला है। शहर के दूसरे फाटक का वर्णन पहले किया जा चुका है (पृष्ठ 126)। यह लाल दरवाजा के नाम से भी विख्यात है। इस परम्परा के आधार पर इसे खूनी दरवाजा का नाम मिला है कि बहादुरशाह के दो बेटों को यहां फांसी पर लटकाया गया था।

44. हस्तसाल मीनार

हस्तसाल नाम का छोटा गांव एक झील के किनारे उस सँकरे मार्ग के अन्त में है जो दिल्ली से 17 किलोमीटर पर दिल्ली-नजफगढ़ रोड के चौराहे से शुरु होता है। यह झील, एक विशाल गर्त है, जो बरसात में पानी से भर

जाती है। गांव के भीतर ईंटों की बनी एक तीन मंजिली शुण्डाकार 17 मीटर ऊंची मीनार है जिसके सामने की ओर लाल पत्थर लगे हैं और एक तंग जीना उसकी चोटी तक पहुंचता है। यह दो स्तरों वाले चबूतरे पर खड़ी है, नीचे का चबूतरा चौकोर है और ऊपर का अष्टभुजाकार है। इसकी पहली मंजिल का निचला आधा हिस्सा बारह किनारों वाला है, शेष ऊंचाई कोणीय और अर्द्ध गोलाकार लम्बी धारियों सहित है जैसी कि कुतुबमीनार की तीसरी मंजिल (पृष्ठ 53) में है।

इसके उत्तर पश्चिम में लगभग 100 मीटर की दूरी पर एक दो मंजिली इमारत है जिसे हाथी खाना (हस्तसाल) कहते हैं। यह विश्वास किया जाता है कि शाहजहां ने इस इमारत को एक शिकारगाह के रूप में बनवाया था। उसका उद्देश्य इस मीनार को एक शिकार मीनार के रुप में इस्तेमाल करने का रहा होगा।

45. कदम-शरीफ

कदम-शरीफ पहाड़गंज में है और इस तक रेलवे लाइन के साथ-साथ कुतुबरोड से या चित्रगुप्त रोड और ओरिजनल रोड के चौराहे से पहुंचा जा सकता है। यह विश्वास किया जाता है कि यहां फिरोजशाह तुगलक (1351-88) ने अपने खुद के इस्तेमाल के लिए यह बड़ा चौकोर मकबरा बनवाया था परन्तु जब उसका पुत्र शहजादा फतहखां मर गया तो उसने इसका इस्तेमाल उसके अवशेषों को दफनाने के लिए कर लिया।

परम्परा के अनुसार फिरोजशाह का आध्यात्मिक सलाहकार मखदूम जहांनियां जहां गश्त बादशाह के आदेश पर पैगम्बर के पदचिह्नों (कदम) का एक पत्थर मक्का से लेकर आया था और चूंकि फतहखां अपने पिता से पहले मर गया, इसलिए उसे उसकी कब्र पर रख दिया गया। बाद में बादशाह ने एक मस्जिद और मदरसा यहां बनवा दिया और इस मकबरे को ऊंची फसीलयुक्त दीवारों से घेर दिया।

इस मकबरे के समीप बाद में अनेक कक्ष जोड़ दिए गए-जैसे मजलिस-खाना और लंगर- खाना । इस अहाते के भीतर अन्य अनेक कब्रें और मकबरे हैं।

46. गाजिउद्दीन खां कॉलेज और मकबरा

ये संस्मारक शाहजहांनाबाद के अजमेरी दरवाजे के बाहर की ओर हैं। पूर्व की ओर एक फाटक सहित मेहराबी कक्षों का एक बड़ा अहाता है और पश्चिम की ओर एक तीन गुम्बदी मस्जिद और उसके उत्तर और दक्षिण में जालीदार पत्थर के परदे सहित अहाते हैं। गाजिउद्दीन खां की कब्र दक्षिणी अहाते में तीन में से एक है। इन संस्मारकों में से बहुतों में लाल बलुआ पत्थर का प्रयोग सामने की ओर परत के रूप में किया गया है।

गाजिउद्दीर्न खां औरंगजेब (1658-1707) और उसके पुत्र तथा उत्तराधिकारी शाह आलम प्रथम (1707-12) के शासन कालों में एक प्रभावशाली राजदरबारी था। उसके पुत्र मीर कमरुद्दीन को मुहम्मदशाह (1719-48) ने दक्कन का सूबेदार नियुक्त किया था और वह हैदराबाद के निजाम के वंश का संस्थापक बना।

मेहराबी कमरों का एक मदरसे के रूप में इस्तेमाल किया गया जो पहला आंग्ल-अरबी मदरसा बना और बाद में आंग्ल-अरबी कॉलेज बना और अब यह दिल्ली-कॉलेज कहलाता है।

47. उत्तरी रिज (पहाड़ी)

(क) फ्लैगस्टाफ टॉवर

दिल्ली विश्वविद्यालय के समीप की पहाड़ी के उत्तरी भाग की चोटी पर एक गोलाकार बुर्ज है जिस पर मूलरूप से एक ध्वजदण्ड लगा था। यह

उस स्थल का स्मरण कराता है, जहां अंग्रेजी महिलाएं और बच्चे विद्रोह के दौरान करनाल भाग कर जाने से पहले 11 मई 1857 को एकत्र हुए थे। यह वह स्थल है जहां विद्रोहियों ने शहर की दीवारों के पीछे हटने से पहले 8 जून 1857 को डटकर मुकाबला किया था।

(ख) चौबुर्जी-मस्जिद

फ्लैग स्टाफ टॉवर के लगभग 400 मीटर दक्षिण-पूर्व में चौबुर्जी मस्जिद एक दुमंजिली इमारत है जिसके बीच के कक्ष के सभी ओर एक एक छोटे कक्ष बने हैं। पश्चिमी कक्ष की पश्चिमी दीवार में एक मिहराब है। ऊपर की मंजिल में दक्षिण-पश्चिमी कोने पर एक गुम्बदयुक्त कक्ष है और ऐसे अन्य कक्ष समाप्त हो गए हैं। उसे इसका यह नाम अर्थात् "चार बुर्जों" वाली मस्जिद अपने प्रारंभिक चार गुम्बदों के कारण मिला है। इसकी मरम्मत और इसमें बदलाव बाद के मुगल काल में किये गए हैं।

स्पष्ट है कि फिरोजशाह तुगलक (1351-88) ने इसे एक मकबरे के रुप में बनवाया था और सम्भवत: यह उसके महल का हिस्सा था जिसे समकालीन लेखक कुश्के-शिकार या कुश्के-जहांनुमा कहते थे। इसके महल का दूसरा बचा हुआ भाग पीर-गायब है जिसका वर्णन नीचे किया गया है।

(ग) पीर-गायब

चौबुर्जी मस्जिद के दक्षिण-पश्चिम में कुछ दूरी पर एक दुमंजिली अनगढ़े पत्थरों से निर्मित जीर्ण-शीर्ण इमारत है जो अब अपने पड़ोस में एक एक बावली सहित हिन्दूराव अस्पताल के अहाते के भीतर है। इसके बाकी बचे अवशेषों में जो दो संकरे कक्ष हैं उत्तर और दक्षिण की ओर अन्य कमरों सहित पूर्व और पश्चिम से रास्ता देते हैं। पूर्व की ओर द्वारों वाले और पश्चिमी दीवार में मिहराबों सहित दूसरी मंजिल पर दो कमरे हैं जिनके

पलस्तर पर उनके ऊपर धार्मिक उद्‌गार व्यक्त किए गए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मस्जिद के रूप में इसका इस्तेमाल किया जाता था। उत्तरी कमरे में एक स्मारक कब्र पूर्व- पश्चिम की ओर स्थित है जो परम्परा के अनुसार उस फकीर की याद कराती है जो इस कमरे को अपनी चिल्लागाह (प्रार्थना स्थल) के रूप में इस्तेमाल करता था, परन्तु जो अन्त में रहस्यमय ढंग से गायब हो गया, इसलिए ही इस संस्मारक को वर्तमान नाम अर्थात् "गायब फकीर-" मिला।

दक्षिणी कमरे के फर्श और छत को भेदता हुआ एक सूराख है जो एक खोखली चिनाई में गोलाकार है। इसका उद्‌देश्य ज्ञात नहीं है, परन्तु यह विश्वास किया जाता है कि इसका इस्तेमाल खगोलीय प्रेक्षणों के लिए किया जाता होगा और इसका संबंध उस स्थान से रहा होगा जिसके समकालिक विवरणों में कुश्के-जहांनुमा (विश्व दर्शन महल) के रूप में वर्णन पाया जाता है। इस इमारत को फिरोजशाह तुगलक ने बनवाया था और यह उसके कुश्के-शिकार (शिकार महल) या कुश्के-जहांनुमा का हिस्सा था। शरफुद्‌दीन अली याजदी ने उल्लेख किया है कि तैमूर ने फिरोजशाह के उस महल को देखा था जिसे जहांनुमा कहा गया है।

(घ) अशोक का स्तम्भ

चौबुर्जी मस्जिद और हिन्दूराव अस्पताल के बीच सड़क के उत्तर में अशोक के स्तम्भ को स्थापित किया गया है जिसे फिरोजशाह तुगलक मेरठ के आस-पास से लाया था और इसे शिकार महल में खड़ा किया था। उसके द्‌वारा टोपरा से लाए गए दूसरे स्तम्भ को कोटला फिरोजशाह में स्थापित किया गया था। (पृष्ठ 128)

इस स्तम्भ पर अशोक की राजाज्ञा-पहली से पांचवीं तक-आंशिक रूप से या पूर्ण रूप से उल्लिखित है। समकालीन इतिहासकार इन स्तम्भों के मूल स्थल से दिल्ली तक नदी के जरिए कठिन परिवहन द्वारा लाये जाने

का वर्णन करते हैं। यह स्तम्भ अब लम्बाई में 10 मीटर है। यह फर्रुखसियर (1713-19) के शासन काल के दौरान एक विस्फोट में पांच टुकड़ों में टूट गया तथा इसके अभिलिखित अंशों को बाद में आरी से काटा गया और एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल को वे टुकड़े भेज दिए गए। सन् 1866 में वे वापस लाए गए और सन् 1867 में उन्हें यहां जोड़कर स्थापित किया गया।

(ड) अजीतगढ़ या विद्रोह-स्मारक (म्यूटिनी मेमोरियल)

दूसरी सड़क से प्रवेश करने पर अशोक के स्तम्भ से लगभग 200 मीटर दक्षिण में विद्रोह-स्मारक (म्यूटिनी मेमोरियल) है जिसे हाल ही में अजीतगढ़ के रूप में दूसरा नाम दिया गया है। लाल बलुआ पत्थर की यह एक अष्टभुजाकार शुण्डाकार मीनार दो स्तरों के चबूतरे पर स्थित है और इसके अन्दर की ओर एक जीना है, यह 1857 में दिल्ली पर कब्जे के दौरान टेलर्स बैटरी के स्थल पर बनी है और 1863 में विद्रोह के दौरान दिल्ली फील्ड फोर्स के जो सैनिक मारे गए थे, उनकी याद में इसका निर्माण करवाया गया था।

विभिन्न यूनिटों, अफसरों के नाम और अंग्रेजों तथा भारतीय अफसरों की संख्या तथा उनके रैंक, जो इस विद्रोह में मारे गए थे, इस बुर्ज के आस-पास अलग-अलग पत्थरों पर उत्कीर्ण किए गए हैं। पहले यह फतहगढ़ या जीतगढ़ कहलाता था। परन्तु भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति की रजत-जयंती के अवसर पर सन् 1972 में एक नया फलक यहां लगाया गया है और इस स्थल को उन शहीदों के स्मारक के रूप में बदल दिया गया है जो सन् 1857 में उपनिवेशवादी शासन के खिलाफ उठ खड़े हुए थे।

48. शालीमार बाग

बादली-सराय से थोड़ी दूर आगे दिल्ली से लगभग 10 किलोमीटर दूर दिल्ली-करनाल रोड से फटने वाली एक तंग सड़क हैदरपुर गांव जाती है। इस गांव से लगभग 800 मीटर पूर्व में शालीमार बाग है जहां 31 जुलाई 1658 (पृष्ठ 46) को औरंगजेब ने स्वयं अपना राज्याभिषेक करवाया था। प्रारम्भ में इसके मध्य में एक महल सहित एक अहाता था जो शीशमहल कहलाता था जो चित्रों के चिन्हों सहित अंशों में बाकी बचा है। कुछ और इमारतें भी थीं परन्तु वे अब समाप्त हो गई हैं।

प्रारम्भ में यह बाग अइज्जाबाद बाग के नाम से जाना जाता था। शायद शाहजहां ने इसे बनवाया था और अपनी बेगम अइज्जुन्निसा बेगम के कारण यह नाम दिया था। औरंगजेब ने इसका इस्तेमाल अपने देहाती गृह के रूप में किया था। इसका उल्लेख यूरोपीय यात्री बरनियर और कात्रो ने किया है। दिल्ली-स्थित अंग्रेज रेजीडेंट सर डेविड ऑक्टरलोनी ने इसका इस्तेमाल अपने ग्रीष्मकालीन एकान्त आवास के रूप में किया और यहां वह ज्वर से पीड़ित होकर अन्त में मर गया।

49. बादली-सराय

दिल्ली-करनाल रोड पर दिल्ली से लगभग 10 किलोमीटर दूर बादली है, जहां बाद के मुगल काल में एक सराय बनवाई गई थी। इस सराय का अहाता अपने मेहराबी कमरों सहित मिट गया है परन्तु इसके दो प्रवेशद्वार जिनसे प्रारम्भ में ग्रांड ट्रंक रोड गुजरती थी, अभी बाकी बचे हुए हैं। लगभग 500 मीटर में सड़क के उसी ओर एक बलुआ पत्थर का स्तम्भ है जो गार्डन हाईलैण्डर्स की स्मृति में बनाया गया था जो विद्रोह के दौरान यहां मारे गए थे। इस सड़क के दूसरी ओर एक छोटा अष्टभुजाकार

मकबरा है जिसे मकबरा पाइक कहते हैं जिसके सभी ओर गहरी अंधी मेहराबें है परन्तु द्वार केवल मुख्य दिशाओं से ही है।

50. राज्याभिषेक स्मारक (कॉरोनेशन मेमोरियल)

किंग्सवे के गोल चक्कर पर माल रोड (करनाल रोड) से उत्तर की ओर जाने वाली भाई परमानन्द रोड पर दिल्ली से लगभग 17 किलोमीटर पर एक बलुआ पत्थर का स्तम्भ राज्याभिषेक के स्मारक के रूप में स्थित है जहां राजा जॉर्ज पंचम और महारानी मैरी के आगमन के अवसर पर सन् 1911 में दरबार लगा था।

51. त्रिपोलिया प्रवेश-द्वार

वर्तमान दिल्ली करनाल रोड से सब्जी मंडी को जोड़ने वाली सड़क पर एक सराय थी जो गुड़ की सराय कहलाती थी और जिसे बाद के मुगल काल में बनवाया गया था। इसके तीन प्रवेश द्वारों से, जिनके दोनों छोरों पर मेहराबी दरवाजे हैं, पुरानी ग्रांड ट्रंक रोड गुजरती थी। यह ज्यादातर ईंटों से निर्मित है यद्यपि उसकी परत में बलुआ पत्थर का भी इस्तेमाल हुआ है। ये द्वार जैसाकि उनके दोनों प्रवेश द्वार पर एक-एक अभिलेख से पता चलता है नाज़िर महलदार खां द्वारा 1141 हिजरी (1728-29) में बनवाए गए थे।

52. रोशनआरा बाग और मकबरा

शाहजहां की छोटी बेटी रोशनआरा, जिसका देहान्त 1671 में हुआ था, का मकबरा सब्जी मंडी में घंटा घर से लगभग 400 मीटर दक्षिण में है। अपने पिता द्वारा शाहजहांनाबाद (पृष्ठ 140) के पूरे करवाये जाने के

फौरन बाद उसने अपने बाग युक्त मकबरे का निर्माण 1650 में करवाया था। बगीचे के बीच में स्थित यह मकबरा जिसने अपने नक्शे के बनाये जाने में बहुत से परिवर्तन देखे हैं बारादरी के नाम से विख्यात है और यह ईंटों से निर्मित है। परन्तु इसके मध्य में बिना छत का कब्र सहित कक्ष है जो छत्ता-वाले दालान से घिरा हुआ है (दालान में मेहराबी खुले द्वार है) और कोनों पर दुमंजिले गुम्बदयुक्त कक्ष हैं। प्रारम्भ में यह मकबरा गहरी अलंकृत नालियों से घिरा हुआ था, जिनके दोनों ओर फव्वारे दिए गए थे। उनका इस्तेमाल बन्द हो गया और वे चबूतरों से ढक दिए गए परन्तु बाद में इन्हें निकाला गया। हाल के वर्षों में यहां जापानी शैली के बगीचे लगाए गए हैं।

53. वज़ीराबाद

तिमारपुर से कुछ आगे यमुना के किनारे वज़ीराबाद गांव है जहां दिल्ली से लगभग 6 किलोमीटर दूर माल रोड से उत्तर में निकलने वाली सड़क से पहुंचा जाता है। तैमूर ने दिल्ली से लौटते समय वज़ीराबाद के नज़दीक डेरा डाला था और इसके समीप यमुना को पार किया था।

गांव के दक्षिण में लगभग 1 किलोमीटर पर एक नाले के मोड़ पर जो अब यमुना में गिरता है कुछ अनगढ़े पत्थरों से निर्मित संस्मारक हैं जिन्हें फिरोजशाह तुगलक (1351-88) ने बनवाया था। प्रमुख संस्मारक एक मस्जिद है जिसमें दो खंडों वाले गहरे प्रार्थना-कक्ष हैं जिसके पांच मेहराबी द्वार हैं। पिछला खंड तीन गुम्बदों द्वारा आच्छादित है, जबकि एक छोटा कक्ष-जो स्तम्भों पर आधारित है और जिसमें जालीदार पत्थरों के परदे लगे हैं- इसका निर्माण महिलाओं के इस्तेमाल के लिए एक अन्तर मंजिल के रूप में किया गया था।

दीवारों से घिरी मस्जिद के आंगन के मध्य में एक चौकोर मकबरा है जिसके बारे में कहा जाता है कि यह फिरोज तुगलक के समय के एक फकीर शाह आलम का है। इसकी गुम्बदयुक्त छत बारह स्तम्भों पर

आधारित है और इसकी बगलें पहले जालीदार परदों द्वारा बन्द की गई थीं जिसमें से अभी कुछ बाकी बचे है।

इस नाले पर नौ मेहराबी खुले द्वारों वाला अनगढ़ पत्थरों से निर्मित एक पुल आरपार फैला हुआ है जिसके ऊपर का एक मजबूत उपसेतु उत्तर की ओर आगे जाता है। इसके उत्तरी छोर पर एक जल द्वार कक्ष सहित तीन छोटे-छोटे खंड है जिसे कभी-कभी मछली पकड़ने के रूप में भी प्रयोग किया जाता है।

54. मेटकाफ हाउस

पहाड़ी (रिज) के नीचे और अलीपुर रोड के साथ उसके चौराहे से महात्मा गांधी रोड (पुरानी मेटकाफ रोड) द्वारा पहुंचने पर मेटकाफ हाउस आता है जिसमें प्रारंभिक भारोपीय शैली में अनेक कमरे है जिन्हें मुगल राजदरबार के रेजीडेंट सर थॉमस मेटकाफ ने लगभग 1835 में बनवाया था। इसका देहान्त इस घर में सन् 1853 में हुआ। बाद में उसका बेटा और उसका उत्तराधिकारी सर थियोफिलस मेटकाफ इसमें रहा जो दिल्ली में पैदा हुआ था और जिसने विद्रोह के दौरान महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। मेटकाफ हाउस का जिक्र अनेक समकालीन विवरणों और डायरियों में सामाजिक पार्टियों के एक स्थल के रूप में मिलता है।

इस भवन को सर थियोफिलस मेटकाफ ने बेच दिया था और अनेक हाथों में पड़ने के बाद अन्ततः यह भारत सरकार के पास आ गया और अब इसमें एक सरकारी कार्यालय है।

55. कुदसिया-बाग

नवाब कुदसिया बेगम, जो प्रारम्भ मे एक नर्तकी थी और जो मुहम्मदशाह (1719-48) की चहेती बेगम थी और अहमदशाह (1748-54) की मां थी ने लगभग 1748 में यमुना के किनारे एक बड़ा बाग बनवाया था जो अब बिल्कुल कश्मीरी गेट के उत्तर में स्थित है। इस बगीचे

में मूलतः निर्मित महल और अन्य भवन अब समाप्त हो गए हैं। परन्तु इसका ऊंचा पश्चिमी द्वार जो मुख्य प्रवेश का काम देता था अभी खड़ा है। उसके पूर्व में लगभग 300 मीटर पर एक मस्जिद है जिसके तीन मेहराबयुक्त द्वार हैं और यह तीन गुम्बदों द्वारा आच्छादित है। बहादुरशाह द्वितीय ने इस मस्जिद की 1249 हिजरी (1833-34) में मरम्मत करवाई थी, जिसने प्रार्थना कक्ष की उत्तरी दीवार पर एक संगमरमर के पत्थर पर एक तारीख लगा अभिलेख छोड़ा है।

56. शाहजहांनाबाद

(क) प्राचीरें और प्रवेशद्वार

शाहजहां सन् 1638 में अपनी राजधानी आगरा से हटाकर दिल्ली ले आया और दिल्ली के सातवें नगर शाहजहांनाबाद की आधार शिला रखी जो 1649 में पूरा हुआ। यह शहर योजना में बहुभुजी था और उसमें घरों के खंड, चौड़ी सड़कें, मस्जिदें और बाजारों की व्यवस्था की गई थी जिसमें चांदनी चौक था जिसके बीच में वृक्षों की छाया में एक नहर बहती थी जोकि समकालीन पूर्व के बाजारों में सबसे आकर्षक बाजार था। उत्तर-पूर्व के कोने में लाल किले सहित अनगढ़े पत्थरों से निर्मित ऊंची ऊंची दीवारों से घिरा यह शहर बुर्जों द्वारा सुदृढ़ था जो गोलाकार एवं चौकोर दोनों थे और जिन्हें भेदते हुए अनेक द्वार थे। इस शहर की दीवारों के बड़े-बड़े हिस्सों को बाद में विद्रोह के दौरान नुकसान पहुंचा और इनका फिर से निर्माण किया गया, इसके हिस्सों में से दीवार के कुछ हिस्से हाल ही की वर्षों में नष्ट हो गए हैं परन्तु इसका महत्वपूर्ण फैलाव अभी भी बाकि है।

छोटी खिड़कियों (प्रवेश द्वार) के अलावा इसके मुख्य चौदह फाटकों में से कुछ ही नष्ट किए जाने से बच गए हैं। इनमें दक्षिण-पश्चिम की ओर अजमेरी दरवाजा, (जवाहर लाल नेहरु रोड, ऑल्ड सर्कुलर रोड) से पहुंचने पर दक्षिण की ओर तुर्कमान दरवाजा, उत्तर में कश्मीरी दरवाजा, उत्तर-पूर्व में निगमबोध दरवाजा तथा दक्षिण-पूर्व में दिल्ली दरवाजा हैं। ये

फाटक सिवाय निगम बोध दरवाजे के, जो नीचा है, और कश्मीरी दरवाजा जिसके पार्श्वीय दो द्वार एक प्रवेश और दूसरा निकास के लिए है योजना में चौकोर हैं तथा ऊंचे मेहराबदार द्वारों के रूप में निर्मित हैं।

(ख) काली या कलां-मस्जिद

काली या कलां-मस्जिद तक तुर्कमान गेट से पहुंचा जा सकता है और यह उसी समान उपाधिवाले पिता के पुत्र और फिरोजशाह तुगलक (1351-88) के वजीरे-आजम खाने जहा जूनां शाह द्वारा निर्मित सात मस्जिदों में से एक है। दुहरे कमरों की शृंखला वाले एक तहखाने सहित इसका आँगन गुम्बददार खम्भों पर आश्रित गलियारों से घिरा हुआ है और इस तक पूर्व में ऊंची सीढ़ियों द्‌वारा पहुंचा जा सकता है। इसके प्रार्थना कक्ष में तीन गहरे गलियारे हैं और इसके पांच द्वार हैं और इसका प्रत्येक खंड एक नीची गुम्बद से आच्छादित है।

सन् 1857 में इसके आंगन से हटाई गई चार कब्रों में से दो के बारे में यह कहा जाता था कि वे निर्माता और उसके पिता की थीं (पृष्ठ 27, 115 भी देखें)। इसके पूर्वी द्वार पर लगा अभिलेख बताता है कि इस मस्जिद को खाने जहां के बेटे जूनां शाह मकबूल ने, जिसकी उपाधि खाने जहां थी, 789 हिजरी (1387) में बनवाया था।

(ग) सुल्ताना रजिया का मकबरा

इल्तुतमिश की योग्य और साहसी बेटी रजिया सन् 1236 में राज-सिंहासन पर बैठी और दिल्ली पर शासन करने वाली अकेली स्त्री थी। बाद में उसके उमरावों ने उसके खिलाफ विद्रोह किया और वह भागकर करनाल जिले में कैथल चली गई।यह विश्वास किया जाता है कि वहां उसे पकड़ कर मार डाला गया और दफना दिया गया (पृष्ठ 19)। तुर्कमान गेट के भीतर थोड़ी दूर पर शाहजहांनाबाद के भीतर एक टेढ़ी-मेढ़ी गली से काली मस्जिद के पूर्व में एक साधारण मकबरे तक पहुंचा जा सकता है जिसके बारे में परंम्परा के अनुसार यह विश्वास किया जाता है कि यह उस का मकबरा है। यह अनगढ़े पत्थरों का एक बिना छत का दीवारयुक्त घेरा है

जिसके बीच में दो कब्रें हैं और अन्य दो कब्रें दक्षिण-पश्चिम के कोने में है। यह कहा जाता है कि बीच की कब्रों में रजिया और उसकी बहन सजिया के अवशेष हैं जिसके बारे में इतिहास में कोई जानकारी नहीं मिलती।

(घ) जीनत-महल

हौज-काजी के पश्चिम में लाल कुआं के बाजार में मेहराबयुक्त मंडपों और सड़क पर छज्जेदार गवाक्षों सहित एक भव्य प्रवेश द्वार वाला एक बड़ा अहाता है। जीनत महल के नाम से विख्यात इसे बहादुर शाह द्वितीय (1837-57) की प्रिय पत्नी जीनत महल ने सन् 1846 में बनवाया था। इसके प्रवेश द्वार की मेहराब पर बादशाह द्वारा रचित एक कविता अभिलिखित है जिसमें उसका उपनाम जफर आया है।

(ङ) फतेहपुरी-मस्जिद

चांदनी चौक के पश्चिमी छोर पर लाल बलुआ पत्थर की एक बड़ी फतेहपुरी मस्जिद है जिसकी बगलों में इकहरी और दुहरी मंजिलों वाले कमरे हैं और पश्चिमी छोर पर इसके प्रार्थना कक्ष में सात मेहराबी खुले दरवाजे हैं और उनमें बीच का मेहराब सबसे ऊंचा है। यह एक अकेले गुम्बद द्वारा आच्छादित है और इसकी बगल में ऊंची मीनारें हैं। इसको शाहजहां की बेगमों में से एक फतेहपुरी बेगम ने सन् 1650 में बनवाया था।

(च) गालिब का घर

एक घर जिसके बारे में यह कहा जाता है कि उर्दू के प्रसिद्ध शायर मिर्जा गालिब (1796-1869) का है जो दिल्ली में काफी समय तक इसी घर में रहे थे और यह गली कासिम जान बल्लीमारान के कोने पर (चांदनी चौक से आते समय) स्थित है। प्रारम्भ में इस घर में तीन दिशाओं में

मेहराबयुक्त गलियारे थे जो एक खुले आंगन को घेरते थे। उसके बाद इसमें पर्याप्त परिवर्तन किया गया है और इसे अब दुकानों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। मिर्जा गालिब की कब्र निजामुद्दीन में है (पृष्ठ 117)।

(छ) गुरुद्वारा-सीसगंज

चांदनी चौक में पुलिस स्टेशन (कोतवाली) के समीप स्थित गुरुद्वारा सीसगंज है जिसे हालांकि बाद में बनवाया गया है और समय-समय पर इसका विस्तार किया गया है, उस स्थल की याद दिलाता है जहां सिखों के नवें गुरु तेग बहादुर का बादशाह औरंगजेब के हुक्म से सन् 1675 में सर कलम किया गया था।

(ज) बेगम समरू का महल

कुमार टाकीज और स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया के बीच एक सड़क द्वारा चांदनी चौक से पहुंचने पर विशाल स्तम्भों सहित एक बड़ा भवन है जो अब भगीरथ पैलेस के नाम से जाना जाता है । यह 1753 में जन्मी मुसलमान लड़की बेगम समरू का महल था, जिसने ईसाई मत को ग्रहण कर वाल्टर रेनहार्ड से शादी की थी, जो अन्यथा सोम्ब्रे (जिससे समरू शब्द लिया गया) के नाम से विख्यात एक भाड़े का सिपाही था तथा जिला मेरठ में सरधाना का जागीरदार था। इस बेगम के पास रेनहार्ड की मृत्यु के बाद यह जागीर बनी रही और वह एक महत्वपूर्ण राजनीतिक जीवन व्यतीत करने के बाद सन् 1836 में मर गयी।

मैगजीन (शस्त्रागार) के प्रवेश द्वार

कश्मीरी गेट दक्षिण में बड़े डाकघर के सामने दो प्रवेश द्वार है जो विद्रोह के दौरान सन् 1857 में उड़ाये गए पुराने बारूदखाने के स्थल की ओर संकेत करते हैं।

(ञ) जामे-मस्जिद

लाल किले के पश्चिम में लगभग 500 मीटर पर भारत की सबसे बड़ी मस्जिद जामे मस्जिद (फलक) 18ख) स्थत है जिसे शाहजहां ने सन् 1650 में बनवाना शुरु किया था और छह साल बाद लगभग दस लाख रुपये की लागत से पूरा करवाया था। एक चट्टान पर एक ऊंचे चबूतरे पर खड़ी इस मस्जिदण् जिसके पूर्व, उत्तर और दक्षिण में सीढ़ियां है, के आंगन तक दुमंजिले प्रवेश द्वारों के जरिए पहुंचा जा सकता है। इसका मुख्य प्रवेश द्वार पूर्व की ओर ही है। नाप में इसका आंगन लगभग 100 वर्ग मीटर है जो स्तम्भयुक्त गलियारों से घिरा हुआ है और इसके कोनों पर गुम्बदी मंडप है। पश्चिम की ओर का आयताकार प्रार्थना हाल, जो 61 x 27.5 मीटर है, के सामने ग्यारह मेहराबों वाला एक शानदार अग्रभाग है जिसमें बीच की मेहराबी ऊंची है। गहराई में इसके दो खंड है और पश्चिमी खंड में केवल सात मेहराब हैं। ये मेहराबें संगमरमर की चौखटों से अलंकृत की गई है जबकि उनके ऊपर काले और सफेद संगमरमर में अभिलेखीय पट्ट हैं। इसका प्रार्थना कक्ष तीन सुडौल गुम्बदों से अलंकृत किया गया है और उनकी दोनों बगलों में पूर्वी कोनों पर चार मंजिली ऊंची शुण्डाकार मीनारें हैं।

इस मस्जिद की पर्याप्त रूप से मरम्मत हुई है। इसका इस्तेमाल बादशाह और उसकी प्रजा दोनों के द्वारा किया जाता था जिनमें पूर्वी प्रवेश द्वार के ऊपर की मंजिल अधिक्तर शाही लोगों के लिए थी।

(ट) सुनहरी-मस्जिद

लाल किले के दिल्ली गेट के बाहर और सुभाष रोड को महात्मा गांधी रोड (राष्ट्रीय राजमार्ग) से जोड़ने वाली नई सड़क पर नेता जी सुभाष पार्क (पुराना एडवर्ड पार्क) के सामने सुनहरी मस्जिद है जो अपने तीन गुम्बदों से आच्छादित है जिस पर प्रारम्भ में तांबे का मुलम्मा चढ़ा था और जिसकी

बगलों में दो मीनारें हैं। उसकी बीच की मेहराब पर एक अभिलेख है जिससे हमें पता चलता है कि इसे अहमदशाह (1748-54) की पत्नी नवाब कुदसिया बेगम ने 1751 में बनवाया था। बहादुर शाह द्वितीय ने सन् 1852 में इसकी मरम्मत करवाई थी जिसने क्षतिग्रस्त गुम्बदों के तांबे के पत्तरों के स्थान पर बलुआ पत्थर की परत चढ़वा दिया।

(ठ) जीनतुल-मस्जिद

दरियागंज में शाहजहांनाबाद की दीवारों के साथ स्थित जीनतुल मस्जिद या घाट मस्जिद में एक लम्बा चौड़ा आंगन है जो तहखाने वाले कक्षों के एक चबूतरे पर बनाई गयी है। ये उत्तर और दक्षिण की ओर खुले हैं जिसका मुख्य प्रवेश द्वार दक्षिणी ओर है। इसके प्रार्थना कक्ष के सामने सात मेहराब हैं और यह तीन गुम्बदों द्वारा ढका हुआ है। और जिसकी बगलों में ऊंची मीनारें हैं। उपर्युक्त शाहजहां की जामे-मस्जिद की तरह यह भी ज्यादातर बलुआ पत्थर से बनाई गई है और इसकी गुम्बदों पर काले और सफेद संगमरमर की एकान्तर धारियां हैं। अपनी ऊंची मीनारों, धारीदार गुम्बदों और लाल रंग के साथ इसे देख कर यह अनुमान होता है कि एक छोटे पैमाने में यह जामे-मस्जिद की नकल है।

57. सलीमगढ़

अनगढ़े पत्थरों से निर्मित मोटी प्राचीरों और गोलाकार बुर्जों वाला सलीमगढ़, जिसकी काफी हद तक मरम्मत हो चुकी है, योजना में मोटे तौर पर त्रिकोणात्मक है और यह यमुना के किनारे लाल किले के उत्तर पूर्व में स्थित है। यह विश्वास किया जाता है कि इसे शेरशाह सूर के पुत्र और उसके उत्तराधिकारी इस्लाम शाह सूर (1545-54) ने बनवाया था जिसे सलीम शाह के रूप में भी जाना जाता है।

58. लाल किला

(क) प्राचीरें और प्रवेशद्वार

सन् 1638 में आगरा से हटाकर अपनी राजधानी दिल्ली लाने के बाद शाहजहांनाबाद 139 का निर्माण शुरु किया और कुछ समय बाद अप्रैल, 1639 को उसने अपने नगर दुर्ग (लाल किला) जिसे समकालीन विवरणों में अन्य नामों से भी जाना जाता है, की आधारशिला रखी। यह 16 अप्रैल, 1648 को नौ साल बाद पूरा हुआ। यह कहा जाता है कि इसमें लगभग एक करोड़ रुपया लगा जिसमें से आधा महलों पर लगा था।

लाल रंग के पत्थर का इसमें अधिक इस्तेमाल होने के कारण इसी नाम से जाना जाने वाला लाल किला योजना में अष्टभुजाकार है और इसके पूर्वी और पश्चिमी दोनों किनारे लम्बे हैं। उत्तर की ओर यह किला सलीमगढ़ से एक पुल द्वारा जुड़ा हुआ है। यह 900 मीटर लम्बा और 550 मीटर चौड़ा है और इसकी प्राचीरें 2.41 किलोमीटर की परिधि में हैं जो ऊंचाई में शहर की ओर 33.5 मीटर हैं और नदी के साथ-साथ 18 मीटर ऊंची हैं। प्राचीरों के बाहर की ओर एक खन्दक है जो प्रारम्भ में नदी से जुड़ी हुई थी।

महल किले की पूर्वी दिशा में स्थित हैं जबकि दो भव्य तीन मंजिले मुख्य प्रवेश द्वार जिनकी बगल में अर्द्ध अष्टभुजाकार बुर्ज है और जिनमें अनेक कमरे हैं, पश्चिमी और दक्षिणी दिशाओं के मध्य में स्थित हैं जो क्रमशः लाहौरी और दरवाजों के नाम से विख्यात हैं (फलक 22)। बाहर की ओर दिल्ली दरवाजे की बगल में दो हाथियों की मूर्तियां हैं जिन्हें लार्ड कर्जन ने 1903 में उसी स्थान पर नए ढंग से लगवाया जहाँ बहुत पहले इन्हें औरंगजेब ने नष्ट कर दिया था। इस किले का मुख्य प्रवेश द्वार लाहौरी दरवाजे के जरिए है और महलों तक एक छत्तादार मार्ग के जरिए पहुंचा जाता है, जिसकी बगल में मेहराबी कमरे हैं जिन्हें छत्ताचौक कहते थे। अब

इनको दुकानों के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। अन्य भागों में राजदरबारियों और परिजनों के रिहायशी आवास थे। इन दोनों फाटकों के सामने बाद में औरंगजेब द्वारा अतिरिक्त किलेबन्दी करवाई गई। अन्य किनारों की ओर तीन अन्य प्रवेश द्वार हैं जिन्हें काफी हद तक अब बन्द कर दिया गया है।

लाल किले के उत्कृष्ट कारीगर हमीद और अहमद थे। अन्य अधिकारीयों ने भी इसके निर्माण का निरीक्षण किया था जिन्हें बादशाह ने उच्च पदों पर नियुक्त करके प्रचुर मात्रा में पुरस्कृत किया था।

इस किले की बहुत-सी इमारतों पर अंग्रेजी सेना का कब्जा था और इन पर उनके द्वारा किए गए कलाकृति-ध्वंस के निशान मौजूद हैं। बहुत-सी इमारतें खस्ता हालत में थीं और इन्हें 1857 के विद्रोह के बाद हटा दिया गया।

(ख) नौबत या नक्कार-खाना

नौबत या नक्कार-खाना महल क्षेत्र के प्रवेश द्वार पर स्थित है और इसका इस्तेमाल मांगलिक समय पर दिन में पांच बार संगीत बजाने के लिए किया जाता था। यह हाथीपोल भी कहलाता था क्योंकि यहां दर्शक अपने-अपने हाथियों से उतर जाते थे। इसके सामने लाल पत्थर लगा है और यह योजना में आयताकार एक तिमंजिली बड़ी इमारत है। लगता है कि प्रारम्भ में उसकी लाल पथ्थर की दीवारों पर नक्काशी की गई डिजाइनों को सोने से चित्रित किया गया था जबकि अन्दर की ओर अन्य रंगों से चित्रित किया गया था। इन चित्रों को प्रवेश कक्ष में अब भी कई परतों में देखा जा सकता है।

यह कहा जाता है कि बाद के मुगल बादशाह जहांदारशाह (1712-13) और फर्रुखसियर (1713-19) को नौबत खाने में कत्ल कर दिया गया था। इसकी ऊपरी मंजिल में अब युद्ध-स्मारक संग्रहालय है।

(ग) दीवाने-आम

दीवाने आम (आम दर्शकों का हॉल) अगली इमारत है जिसे दर्शक देखने जाते हैं। प्रारम्भ में इसके सामने एक प्रांगण था। वास्तविक हॉल जो गहनता में तीन खंडों में है, प्रारम्भ में गचकारी के काम से अलंकृत किया गया था और इसमें भारी परदे लटकाए गए थे, स्तम्भों पर आश्रित मेहराबों पर निर्मित किया गया है और इसका लहरदार मेहराबों के नौ द्वारों वाला एक अग्रभाग है। इसके पीछे की ओर संगमरमर की एक छतरी या वितान है जो इसकी "बंगाल" छत से ढका हुआ है और जिसके नीचे बादशाह का सिंहासन था (फलक 23)। बादशाह यहां आम जनता से मिलता था और उनकी शिकायतें सुनता था। संगमरमर का एक मंच, जो मूल्यवान पत्थरों से जड़ा हुआ है, राजसिंहासन के नीचे है और इसका इस्तेमाल शिकायतें और याचिकाएं प्राप्त करने के लिए वज़ीरे-आज़म द्वारा किया जाता था।

इस छतरी के पीछे दीवार पर सुन्दर पटल हैं जो बहुरंगे पत्थरों से जड़े हैं जिनमें फूल और पक्षी प्रदर्शित किए गए हैं। इन फलकों के बारे में कहा जाता है कि इन्हें आस्तां दि बोर्दो नामक फ्लोरेंस के एक जौहरी ने तैयार किया था। ऊपर के बीच के फलक में यूनानी देवता ऑरफियस को उसकी बांसुरी के साथ दिखलाया गया है। ये फलक काफी क्षतिग्रस्त हो गए थे और इन्हें एक समय हटाकर लन्दन के विक्टोरिया एण्ड अल्बर्ट संग्रहालय में ले जाया गया था परन्तु लॉर्ड कर्जन के आग्रह पर सन् 1903 में इन्हें पुनः वापस लाकर यथास्थान लगा दिया गया।

(घ) मुमताज महल

प्रारम्भ में नदी के सामने के भाग के साथ-साथ छह मुख्य महल थे। उनके बीच से नहरे-बहिश्त बहती थी। इनमें से एक जो मुमताज महल के उत्तर में थी जिसे छोटी बैठक कहते थे अब नष्ट हो गयी है। महलों की पंक्तियों के दक्षिणी छोर पर मुमताज महल मौजूद है। दीवारों और स्तम्भों के अपने आधे निचले हिस्से में संगमरमर से निर्मित तथा मेहराबी द्वारों से विभाजित इसमें छह कक्ष है और प्रारम्भ में यह अन्दर की ओर चित्रित था। यह शाही हरम का हिस्सा था। आजकल इसमें दिल्ली का पुरातत्व संग्रहालय स्थित है जिसमें अधिकतर मुगल काल की वस्तुएं आजकल रखी है।

(ङ) रंग-महल

एक तहखाने पर टिका हुआ रंग-महल एक बड़ा हॉल है जिसे प्रारम्भ में अन्दर से चित्रित किया गया था, इसलिए इसका यह नाम पड़ा अर्थात् "रंग का महल"। स्तम्भों पर टिका लहरदार मेहराबों द्वारा यह छह कक्षों में विभाजित है जिसमें से इसके उत्तरी और दक्षिणी छोर के दो कमरों में स्तम्भों की कुरसियाँ संगमरमर की है। इन कमरों की अन्दरूनी छतों और दीवारों पर दर्पण के छोटे-छोटे टुकड़े जड़े है जो कि एक जलती हुई दियासलाई या अन्य प्रकाश को प्रतिबिम्बित करते है और इस प्रकार एक नयनाभिराम दृश्य प्रस्तुत करते हैं। ये कमरे शीश महल कहलाते हैं।

यह इमारत शाही हरम का ही हिस्सा थी। इसके बीच इसकी लम्बाई के साथ-साथ एक नहर, जो नहरे बहिश्त के नाम से विख्यात थी, बहती थी, इसके बीच में एक संगमरमर का हौज था जिसके बारे में यह कहा जाता है कि इसमें मूल रूप में एक हाथी दांत से बना फव्वारा लगा था।

(च) खास-महल

खास-महल (निजी महल) के तीन भाग हैं। तीन कमरों का समूह जो दीवाने-खास के सामने है, तस्बीहखाना (माला जपने का कक्ष) कहलाता है। इसका इस्तेमाल बादशाह द्वारा निजी इबादत के लिए किया जाता था। इसके पीछे के तीन कमरे ख्वाबगाह (शयन कक्ष) कहलाते थे। उसके दक्षिण में एक लम्बा कक्ष है जिसकी दीवारें और छत चित्रित हैं तथा पश्चिम में एक जालीदार परदा वाला तोशखाना (वस्त्र पहनावा कक्ष) या बैठक के नाम से विख्यात है। इन कमरों के उत्तरी छोर पर नक्काशीदार न्याय-तुला एक सुन्दर संगमरमर के जालीदार परदे पर तारों और बादलों द्वारा आच्छादित अर्द्धचन्द्र के ऊपर लटकी हुई बनाई गइं है (फलक 24)।

इसके नीचे और अन्य महलों के नीचे पशुयुद्ध का आयोजन होता था जैसे सिंहों और हाथियों के बीच लड़ाइयां जिन्हें बादशाह और शाही परिवार की महिलाओं द्वारा इन महलों से देखा जा सकता था।

ख्वाबगाह की दक्षिणी मेहराब के ऊपर एक अभिलेख है जिससे हमें यह पता चलता है कि यह इमारत 1048 हिजरी (1639) में बननी शुरू हुई थी और 1058 हिजरी (1648) में पचास लाख रुपये की लागत से पूरी की गई जो संभवतः सभी महलों पर किए गए खर्च की ओर संकेत करता है।

(छ) मुसम्मन-बुर्ज

ख्वाबगाह की पूर्वी दीवार से लगा हुआ एक अर्द्ध अष्टभुजाकार बुर्ज है जिसे मुसम्मनबुर्ज (अष्टभुजाकार बुर्ज) कहते हैं जहां बादशाह हर सबेरे अपनी रियाया के सामने उपस्थित होते थे। यह समारोह दर्शन के नाम से जाना जाता था। अकबर द्वितीय (1806-37) ने 1223 हिजरी (1808-09) में मुसम्मन बुर्ज के बीच से बाहर निकलता हुआ एक छज्जा निर्मित करवाया था जैसा कि उसके मेहराबों पर अंकित अभिलेख में उसने

उल्लेख किया है। इसी छज्जे से सन् 1911 में बादशाह जॉर्ज पंचम और रानी मेरी ने जनता को दर्शन दिए थे।

(ज) दीवाने-खास

अपनी बगलों पर लहरदार मेहराबों के द्वारा प्रवेश वाला दीवाने-खास (निजी श्रोताओं का हॉल) एक आयताकार मध्य कक्ष है जो खम्भों से उठने वाली मेहराबों के गलियारों द्वारा घिरा हुआ है (फलक 2)। खम्भों के निचले हिस्सों में फूल-पत्तियों की सजावट जड़ाऊ रूप में है जबकि ऊपर के भागों पर मुलम्मा चढ़ा हुआ है और जिन्हें चित्रित किया गया है। इस हाल की लकड़ी की अन्दरूनी छत को सन् 1911 में रंगा गया था। इसकी छत के चारों कोने स्तम्भयुक्त छतरियों से आच्छादित हैं।

इसके मध्य में संगमरमर की आधार-चौकी पर प्रसिद्ध मयूर सिंहासन रखा था जिसे सन् 1739 में उठाकर नादिरशाह ले गया। इस हॉल के मध्य से नहरे-बहिश्त बहती थी। कंगनियों के नीचे उत्तरी और दक्षिणी दीवारों के कोनों की मेहराबों के ऊपर अमीर खुसरो की यह हैरत अंगेज मशहूर नज्म, 'अगर कहीं पृथ्वी पर स्वर्ग है तो यहीं है, यहीं है, यहीं है' उत्कीर्ण की गई है।

इस कक्ष का प्रयोग बादशाह चुनिन्दा राजदरबारियों और दर्शकों से निजी चर्चा के लिए करते थे। प्रारम्भ में दीवाने-खास के पश्चिम में दो अहाते थे, एक उमरावों के लिए था और दूसरा उनके लिए था जो बहुत ऊंचे पदों पर नहीं होते थे। ये अहाते 1857 के विद्रोह के बाद हटा दिए गए। विद्रोह के समय बहादुरशाह द्वितीय ने दीवाने-खास में राजदरबार लगाया था।

(झ) हमाम

दीवाने खास के उत्तर में स्नानागार समूह या हमाम है जिसमें गलियारों द्वारा अलग किए गए तीन कक्ष हैं। इन कक्षों के फर्श और कुरसियाँ संगमरमर की हैं जिन पर बहुरंगे पत्थरों के फूल-पत्तियों के नमूने जड़े थे। यह विश्वास किया जाता है कि वर्तमान प्रवेश द्वार के दोनों ओर दो कमरों का इस्तेमाल शाही बच्चों द्वारा नहाने के लिए किया जाता था। पूर्वी कक्ष जो फव्वारों वाले तीन हौजों से युक्त था जिसमें से एक गुलाब-जल छोड़ने वाला माना जाता है मुख्यतः श्रृंगार कक्ष के रूप में प्रयुक्त होता था। कक्ष के मध्य में एक हौज है। पश्चिमी कक्ष गरम या वाष्प स्नान के लिए इस्तेमाल होता था जिसके लिए ताप-व्यवस्था पश्चिमी दीवार में की गई थी।

(ञ) मोती मस्जिद

इस हमाम के पश्चिम में छोटी मस्जिद जिसे मोती मस्जिद कहते हैं औरंगजेब द्वारा अपने निजी इस्तेमाल के लिए बनवाई गई थी। इस मस्जिद के प्रार्थना कक्ष में काले संगमरमर की बाहरी रेखा वाले मुसल्ले (प्रार्थना के लिए छोटी दरियाँ) बने हैं और यह आंगन की सतह से ऊंचाई पर स्थित है। यह कक्ष तीन उभरे हुए गुम्बदों द्वारा आच्छादित है जिन पर प्रारम्भ में तांबे का पत्तर लगा था जो लगता है कि गर्दन पर (फलक 2) काफी हद तक दबा हुआ है। पूर्वी दरवाजे में तांबे के पत्तरों की पत्तियां दी गई हैं। इस मस्जिद का प्रयोग हरम की महिलाएं भी करती थीं।

(ट) हयात बख्श बाग और मंडप

मोती मस्जिद के उत्तरी क्षेत्र में एक बाग है जिसे हयात बख्श बाग (जिन्दगी बख्शने वाला बाग) कहते थे जो उपमार्गों और नालियों द्वारा मुगल

बगीचों के नमूने पर चौकोर रूप में विभाजित था। इसका उल्लेख समकालीन विवरणों में मिलता है, हालांकि इसका वर्तमान नक्शा नया है।

इस बाग के उत्तर-पूर्वी कोने पर शाह बुर्ज नाम का एक बुर्ज है जो अब गुम्बद रहित है जिसे 1857 के विद्रोह के दौरान काफी नुक्सान पहुंचा है। इसी प्रकार का एक बुर्ज जो असद बुर्ज के नाम से विख्यात है इस किले के दक्षिण-पूर्वी किनारे पर स्थित है। स्पष्ट है कि नहरे-बहिश्त को पानी पहुंचाने के लिए पानी नदी से शाहबुर्ज तक उठाया जाता था और उसके बाद विभिन्न महलों में नालियों द्वारा ले जाया जाता था। दक्षिण की ओर इस बुर्ज से सटा हुआ वर्तमान मंडप शायद औरंगजेब के शासन-काल में बनवाया गया था। उत्तरी दीवार के मध्य में एक संगमरमर का जलप्रपात है जिससे जल एक "शंखनुमा" हौज में छलकता रहता था।

इस बगीचे के दक्षिणी और उत्तरी किनारों के मध्य में दो अन्य संगमरमर के मंडप हैं जो बरसात के दो प्रमुख महीने सावन और भादों के नाम से विख्यात हैं। ये या तो उन महीनों का प्रतिनिधित्व करते हैं या उन महीनों में इस्तेमाल किए जाते थे। परन्तु इनमें से कौन सा सावन है और कौन सा भादों है, यह सही तौर पर निश्चित नहीं है। उत्तरी मंडप में एक तालाब और उसमें मोमबत्तियां रखने के लिए आलों की व्यवस्था की गयी है ताकि उन पर जलप्रपात के रूप में गिरने वाला पानी एक सुरम्य प्रभाव उत्पन्न कर सके।

पूर्वी दीवार के साथ-साथ जमीन के ऊंचे उठे भाग पर दो संगमरमर के छोटे मंडप थे जिन्हें बहादुर शाह द्वितीय ने बनवाया था। इनमें से उत्तरी मंडप मोती महल और दक्षिणी मंडप हीरा महल के नाम से विख्यात था। पहले को 1857 के विद्रोह के बाद हटा दिया गया और दूसरा अभी खड़ा है। इस बाग के बीच में एक बड़ा तालाब है जिसके बीच में एक लाल बलुआ पत्थर का महल है जो प्रारम्भ में इस बाग के साथ एक उपमार्ग से जुड़ा हुआ था। यह बहादुर शाह द्वितीय के तखल्लुस के अनुरूप जफर महल के नाम से विख्यात है जिसे उसने लगभग सन् 1842 में बनवाया था।

संकलन सन्दर्भिका

अलैग्जैण्डर कनिंघम, आर्केआलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया रिपोर्ट्स, भाग 1 (शिमला, 1871), पृष्ठ 132-231; भाग-4 (कलकत्ता, 1874), पृष्ठ 1-91; भाग-20 (कलकत्ता, 1885) पृष्ठ 142-161।

एच० शार्प, दिल्ली, इट्स स्टोरी एण्ड बिल्डिंगज (दिल्ली, 1921)।

एच० जी० कीन, हैण्डबुक फोर विजिटर्स टु देल्ही, ई० ए० डुन्कन द्वारा पुनर्लित (कलकत्ता, 1906)।

एच० सी० फन्श, देल्ही पास्ट एण्ड प्रैजेन्द, (लण्डन, 1902)।

कार स्टीफन, दि आर्केआलाज़ी एण्ड मान्यूमेंटल रिमेन्स आफ देल्ही (लुधियाना और कलकत्ता, 1876)।

जी० आर० हर्न, दि सेवन सिटीज आफ देल्ही (लण्डन, 1906)।

टी० जी० पी० स्पीयर, देल्ही: ए हिस्टारिकल स्कैच (मुंबई 1945)।

तत्सुरो यमामोतो, मत्सुओ एरा और तोकिफ्यूसा त्सुकिनोबा, देल्ही : आर्किटेक्चरल रिमेन्स आफ दि देल्ही सुलतानत पीरियड, 3 भाग, (टोकियो, 1968-70)।

परसी ब्राउन, इण्डियन आर्किटैक्चर (इस्लामिक पीरियड), पांचवां संस्करण, (मुंबई, 1968)।

बशीरुद्दीन अहमद, वाकेयाते-दारुल-हुकुमाते-दिल्ली, 3 भाग (आगरा, 1919)।

सैयद अहमद खां, आथार-उस-सनादीद (देल्ही, 1847, और कानपुर, 1904)।

संस्मारकों की सूची[1]

1. इस सूची में केवल दिल्ली के स्मारक ही सम्मिलत हैं।

त

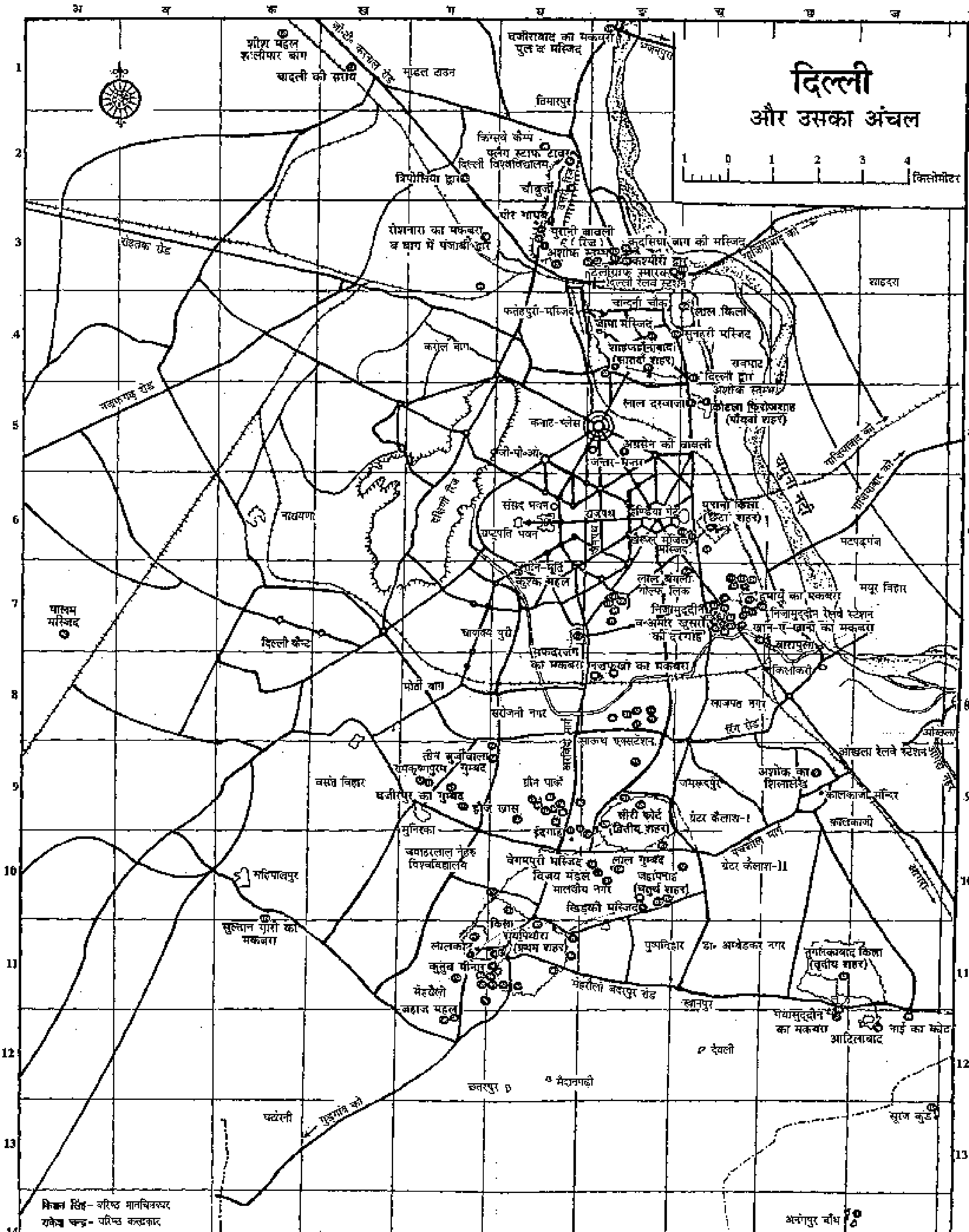
द

न

प

फ

फलक - 27



दिल्ली
और उसका अंचल
किलोमीटर
शीश महल
शालीमार बाग
बादली की सराय
माडल टाउन
विमारपुर
किंग्सवे कैम्प
दिल्ली विश्वविद्यालय
त्रिपोलिया द्वार
चौबुर्जी
रोशनारा का मकबरा
रोहतक रोड
अशोक स्तम्भ
कुदसिया बाग की मस्जिद
कश्मीरी द्वार
दिल्ली रेलवे स्टेशन
चान्दनी चौक
लाल किला
फतेहपुरी-मस्जिद
जामा मस्जिद
सुनहरी मस्जिद
शाहजहानाबाद
करोल बाग
दिल्ली द्वार
शाहदरा
नजफगढ़ रोड
लाल दरवाजा
कोटला फिरोजशाह
(पाँचवाँ शहर)
कनाट-प्लेस
अग्रसेन की बावली
जन्तर-मन्तर
संसद भवन
राजपथ
इण्डिया गेट
पुराना किला
राष्ट्रपति भवन
यमुना नदी
मयूर विहार
हुमायूँ का मकबरा
निजामुद्दीन रेलवे स्टेशन
पालम
मस्जिद
दिल्ली कैन्ट
चाणक्य पुरी
सफदरजंग
का मकबरा
मोती बाग
सरोजनी नगर
लाजपत नगर
रिंग रोड
ओखला
ओखला रेलवे स्टेशन
तीन बुर्जीवाला गुम्बद
वसंत विहार
हौज खास
ग्रीन पार्क
सीरी फोर्ट
अशोक का शिलालेख
कालकाजी मन्दिर
कालकाजी
ग्रेटर कैलाश-I
ग्रेटर कैलाश-II
मुनिरका
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
बेगमपुरी मस्जिद
विजय मंडल
लाल गुम्बद
जहाँपनाह
महिपालपुर
सुल्तान गारी का मकबरा
खिड़की मस्जिद
पुष्पविहार
डा॰ अम्बेडकर नगर
तुगलकाबाद किला
कुतुब मीनार
महरौली बदरपुर रोड
खानपुर
जहाज महल
आदिलाबाद
देवली
छतरपुर
मैदानगढ़ी
गुड़गाँव को
सूरज कुंड
अनंगपुर बाँध

स्मारक तथा स्थान

1. अजमेरी गेट — ङ 4
2. अधम खान का मकबरा — ग 11
3. अनगपुर बाँध — ज 14
4. अलाउद्दीन का मकबरा — ग 11
5. अग्रसेन की बावली — ङ 5
6. अमीर खुसरो की दरगाह — च 7
7. अशोक का स्तम्भ (रिज) — घ 3
8. अशोक का स्तम्भ एवं कोटला फिरोजशाह — च 5
9. अशोक का शिलालेख — छ 9
10. अतगा खान का मकबरा — च 7
11. अरब सराय — च 7
    - (i) अरब सराय का प्रवेशद्वार (पूर्व दिशा की ओर) — च 7
    - (ii) अरब सराय का प्रवेशद्वार (उत्तर दिशा की ओर) — च 7
    - (iii) अरब सराय का गेट एवं आबादी बाग बुहलीमा — च 7
12. अफसरवाला की मस्जिद तथा इसके दालान (निज़ामुद्दीन) — च 7
    अफसरवाला का मकबरा — च 7
13. बेनाम मकबरा (लोदी गार्डन) — ङ 7
14. बेनाम मकबरा (मोहम्मदपुर) — घ 9
15. बेनाम मकबरे (पांच) मुनीरका — ग 9
16. आदिलाबाद — ज 12
17. आजिमखान का मकबरा — घ 11
18. ईदगाह — घ 10
19. ईसाखान का मकबरा — च 7
20. कश्मीरी गेट — ङ 3
21. काले खान का गुम्बद — ङ 8
22. काबुली दरवाजा — ङ 3
23. काली गुमटी (हौज़खास) — घ 9
24. कोस मीनार(चिड़िया घर) — च 6
25. कुश्के–जहाँनुमा/कुश्क महल — घ 7
26. कुदसिया बाग — ङ 3
    - (i) कुदसिया बाग की मस्जिद — ङ 3
    - (ii) कुदसिया बाग का पुराना प्रवेश द्वार — ङ 3
27. कुतुबमीनार एवं पुरातत्वीय क्षेत्र — घ 11
    - (i) अलाई दरवाजा — घ 11
    - (ii) अलाउद्दीन का मकबरा व मदरसा — घ 11
    - (iii) अलाई मीनार — घ 11
    - (iv) इल्तुतमिश का मकबरा — घ 11
    - (v) लौह स्तम्भ — घ 11
    - (vi) कुव्वतुल इस्लाम मस्जिद — घ 11
28. खान–ए–जहाँ तिलंगानी का मकबरा — च 7
29. खान–ए–खाना का मकबरा — च 7
30. खिड़की – मस्जिद — ङ 10
31. खैरूल मनाजिल मस्जिद — च 6
32. गयासुद्दीन तुगलक का मकबरा (इसमें मोहम्मद दाऊद खान का मकबरा भी निर्मित है) — छ 12
33. गाजिउद्दीन खान का मकबरा — ङ 4
34. चोर मीनार — घ 10
35. चौबुर्जी मस्जिद — घ 2
36. चौसठ खम्बा या मिर्जा अजीज कोकलताश का मकबरा — च 7
37. छोटा बताशा — च 7
38. छोटी गुमटी (हौज़खास) — घ 9
39. जहाज महल — ग 12
40. जन्तर–मन्तर — ङ 5
41. जामी–मस्जिद — ङ 4
42. जमाली कमाली की मस्जिद तथा मकबरा — घ 11
43. जहाँ–आरा बेगम की कब्र — च 7
44. टेलीग्राफ स्मारक — ङ 3
45. ट्रिनिटी कब्रिस्तान — ग 3
46. पुराना किला — च 6
47. पुरानी बावली — घ 3
48. पुराने तोपखाने के द्वार के अवशेष — ङ 3
49. पीर गायब (रिज) — घ 3
50. मस्जिद (पालम) — अ 7
51. फ्लैगस्टाफ टावर — घ 2
52. बलबन का मकबरा — घ 11
53. बादली की सराय — ख 1
54. बड़ा गुम्बद एवं मस्जिद — ङ 7
55. बागे आलम का गुम्बद एवं मस्जिद — घ 9
56. बारापुला — छ 7
57. बहलोल लोदी का मकबरा — च 10
58. बेगमपुरी मस्जिद — ङ 10
59. विजय मण्डल — ङ 10
60. ब्रिगेडियर जॉन निकलसन का मृत्यु स्थल — ङ 3
61. बड़े खान एवं छोटे खान का मकबरा — ङ 8
62. बड़ा बताशा (मिर्जा मुजफ्फर का मकबरा) — च 7
63. बीबी–दादी का गुम्बद — घ 9
64. बदायूँ गेट — घ 11
65. बहादुरशाह द्वितीय का महल (लाल महल) — ग 11
66. बारह खम्बा (हौज़खास) — घ 9
67. बारह खम्बा (निज़ामुद्दीन) — च 7
68. बावली (मुनिरका) — ग 9
69. बावली (निज़ामुद्दीन) — च 7
70. बावली गन्धक — घ 11
71. बुर्ज जहा किला रायपिथौरा तथा जहाँपनाह की प्राचीर मिलती है — घ 11
72. भूरे खान का मकबरा — ङ 8
73. मोठ मस्जिद — ङ 9
74. मोहम्मद तुगलकशाह का मकबरा — छ 12
75. मोहम्मद शाह सैय्यद का मकबरा (निजामुद्दीन) — ङ 7
76. मुबारकशाह का मकबरा — ङ 8
77. मुबारकशाह के मकबरे के साथ वाली मस्जिद — ङ 8
78. मढी मस्जिद — ग 12
79. मोती मस्जिद — ग 11
80. मुंडा गुम्बद — ग 9
81. मिर्जा जहाँगीर की कब्र — घ 7
82. मोहम्मद शाह की कब्र — च 7
83. तुगलकाबाद — छ 11
    तुगलकाबाद के पुराने शहर की प्राचीरें — छ 11
84. तीन – बुर्ज मकबरा — घ 9
85. तोहफे वाला गुम्बद — घ 9
86. दरया खान का मकबरा — ङ 8
87. दिल्ली गेट — च 4
88. नवाब जावेद खान का मकबरा — ङ 8
89. नजफ खां का मकबरा — ङ 8
90. नाई का कोट — ज 12
91. निकलसन की कब्र — ङ 3
92. नीली मस्जिद — घ 9
93. नीला गुम्बद — च 7
94. नीली छतरी/सब्ज बुर्ज — च 7
95. युसूफ कताल का मकबरा — ङ 10
96. राजपुर कब्रिस्तान — घ 2
97. रजियाबेगम का मकबरा — ङ 4
98. रोशनारा का मकबरा एवं बारादरी — ग 3
    रोशनारा गार्डन में स्थित पंजाबी द्वार — ग 3
99. राजों की बैन — घ 11
100. रायपिथौरा किले के प्रवेशद्वार (लाडो सराय) — घ 11
101. रायपिथौरा किले के द्वार तथा ढलान — घ 10
102. रायपिथौरा किले तथा जहाँपनाह किले की प्राचीर मिलने का स्थान (अदचीनी) — घ 10
103. रायपिथौरा किले की प्राचीर, द्वार तथा बुर्ज जो कि नजीर के बाग से कुतुब–तुगलकाबाद रोड के उत्तर में स्थित बुर्ज तक जाती है — घ 11
104. लाल किला या रेड फोर्ट — च 4
    - (i) नौबत खाना
    - (ii) दीवान–ए–आम
    - (iii) दीवान–ए–खास
    - (iv) रंग महल
    - (v) खास महल
    - (vi) मुसम्मन बुर्ज
    - (vii) मुमताज महल
    - (viii) हमाम
    - (ix) मोती मस्जिद
    - (x) सावन
    - (xi) भादों
    - (xii) शाह बुर्ज
    - (xiii) हयात बक्श गार्डन
105. लाल दरवाजा — च 5
106. लाल बंगला — च 7
107. लाल गुम्बद (चिराग दिल्ली) — ङ 10
108. लाल गुम्बद/शेख कबरूद्दीन का मकबरा (मालवीय नगर) — ङ 10
109. लोदी पुल — ङ 7
110. लोथियन मार्ग कब्रिस्तान — ङ 3
111. लक्कड़वाला मकबरा — च 7
112. लेफ्टीनेन्ट एडवर्ड की कब्र — ङ 3
113. लाल कोट — ग 11
    - (i) लालकोट के द्वार
    - (ii) लालकोट तथा रायपिथौरा किले की दीवार जो कि परस्पर जमाली कमाली मस्जिद पर मिलती है।
    - (iii) लालकोट तथा रायपिथौरा किले की दीवार जो कि सोहनगेट से अदमखान मकबरे तक स्थित है।
114. (i) वजीराबाद मकबरा
    - (ii) वजीराबाद पुल
    - (iii) वजीराबाद मस्जिद — ङ 1
115. वजीरपुर का गुम्बद — ग 9
116. बीरों का गुम्बद — घ 9
117. शीश महल — क 1
118. शीश गुम्बद — ङ 7
119. शेरशाह गेट — च 6
120. शाहआलम बहादुरशाह, शाहआलम (द्वितीय) एवं अकबरशाह (द्वितीय) की कब्रें — ग 11
121. सिकन्दर लोदी का मकबरा — ङ 7
122. सफदरजंग का मकबरा — घ 7
123. सतपुला — ङ 10
124. सुल्तान गारी का मकबरा — क 10
125. सुनहरी मस्जिद — ङ 4
126. सिरी फोर्ट — ङ 9
127. मोहम्मद वाली मस्जिद — ङ 9
128. मकदूम की मस्जिद — ङ 9
129. थाने वाला गुम्बद — ङ 9
130. लाल मस्जिद/कनाती मस्जिद — ग 11
131. सूरज कुंड — ज 13
132. सकरी गुमटी — घ 9
133. सुन्दरवाला महल — च 7
134. सुन्दरवाला बुर्ज — च 7
135. सराय शाह जी स्मारकों का समूह — ङ 10
136. सीज बैटरी जो कि सम्मी हाऊस के नाम से प्रसिद्ध है — घ 3
137. हजरत निजामुद्दीन की दरगाह — च 7
138. हौज़ खास — घ 9
139. हौज रानी गेट — ङ 10
140. हौज़ शमसी — ग 12
141. हुमायुं का मकबरा — च 7
142. त्रिपोलिया द्वार — ग 2

स्थान

1. कनाट – प्लेस — ङ 5
2. कालकाजी — छ 9
3. किलोकरी — छ 8
4. किंग्जवे कैम्प — ग 2
5. ग्रीन पार्क — घ 9
6. गोल्फ लिंक — ङ 7
7. चान्दनी चौक — ङ 4
8. चिराग दिल्ली — ङ 10
9. जी०पी०ओ० नई दिल्ली — घ 5
10. जमरूदपुर — च 9
11. तिमारपुर — घ 1
12. तीन–मूर्ति — घ 7
13. दिल्ली विश्वविद्यालय — ग 2
14. साऊथ एक्सटेंशन — ङ 8
15. निजामुद्दीन — ङ 7
16. नार्दन रिज — घ 2
17. दक्षिणी रिज — ग 6
18. पालम — अ 8
19. महिपालपुर — क 10
20. मालवीय नगर — घ 10
21. महरौली — ग 11
22. रामकृष्णपुरम — ग 9

